वर्ष २] सस्ती-साहित्य-माला

तामिल वेद

अर्थात्

दाक्षिणात्य ऋषि तिरुवल्लुवर के मनुष्य-जीवन पर धर्म और अर्थ विषयों के अमृतमय उपदेश

अनुवादक—

क्षेमानन्द 'राहत'

प्रकाशक—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

पहली बार] १९२७ { मूल्य राजसंस्करण का ॥=)
मूल्य साधारण संस्करण का ।)

यह साधारण-संस्करण है

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

हिंदी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर ज़रा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थाई ग्राहक होने के नियम पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एकबार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

* ग्राहक नम्बर

* यदि आप इस मंडल के ग्राहक हैं तो अपना नम्बर यहाँ लि
खिये ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नंबर ज़रूर लिखा करें

मुद्रक
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस

FOREWORD.

If one wishes to understand aright the genius of the Tamil people and their culture one must read Tri-k-kural. A study of this book is necessary to complete a scholar's knowledge of Indian literature as a whole. Shriyut Kshemanand Rahat has done a very great service to the people of Northern India by rendering Tri-k-kural into Hindi. Trivalluvar was an untouchable but there is not the slightest trace of consciousness of this fact in any part of the book nor do any of the numerous references by other Tamil Poets to Trivalluvar and his great book disclose any advertance to this. This total indifference to this 'low' caste of the author of Tri-k-kural together with the high reverential attitude of all contemporary and successive generations of poets and philosophers, is one of the most remarkable phenomena of Indian culture.

Tri-k-kural is a mine of wisdom, refinement and practical insight into human nature. A high spritual level of thought combined with keen insight into human character and its infirmities is the most striking characteristic of this wonderful book. For conscious and disciplined catholicism spirit of Tri-k-kural is a monu-

mental example. As a work of art also it takes high rank in world's literature by reason of brevity, aptness of illustrations and incessiveness of style.

The North will see in this book the intimate connection and unity of the civilization and culture of the North with that of the Tamil People. At the same time Tri-k-kural brings out the beauty and the individuality of the South. I hope that a study of Sjt. Kshemanand Rahat's Hindi version will lead atleast a few ardent spirits of the North to realize the importance of the constructive development of the cultural unity of India and for that purpose to take up the study of Tamil language and literature enabling them to read Tri-k-kural and other great Tamil books in original and enjoy their untranslatable excellences.

TIRCHENGODU
MADRAS
27-1-27

C. Rajgopalachari.

प्रस्तावना

तामिल जाति की अन्तरात्मा और उसके संस्कार को ठीक तरह से समझने के लिये 'त्रिक्कुरल' का पढ़ना आवश्यक है। इतना ही नहीं, यदि कोई चाहे कि भारत के समस्त साहित्य का मुझे पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाय तो त्रिक्कुरल को बिना पढ़े हुए उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। त्रिक्कुरल का हिन्दी में भाषान्तर करके श्री क्षेमानन्दजी राहत ने उत्तर भारत के लोगों की बहुत बड़ी सेवा की है। त्रिक्कुरल जाति के अछूत थे। किन्तु पुस्तक भर में कहीं भी इस बात का ज़रा सा भी आभास नहीं मिलता कि ग्रन्थकार के मन में इस बात का कोई ख़याल था और तामिल कवियों ने भी अनेक स्थानों में जहाँ जहाँ तिरुवल्लुवर की कविताएँ उद्धृत की हैं, या उनकी चर्चा की है; वहाँ भी इस बात का आभास नहीं मिलता कि वे अछूत थे। यह भारतीय संस्कृति का अनूठापन है कि त्रिक्कुरल के रचयिता की जाति की हीनता की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया बल्कि उनके सम सामयिक और बाद के कवियों और दार्शनिकों ने भी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है।

त्रिक्कुरल विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। इस अद्‌भुत ग्रन्थ की सब से बड़ी विशेषता और चमत्कार यह है कि इसमें मानव चरित्र और उसकी दुर्बलताओं की तह तक विचार करके उच्च आध्यात्मिकता का प्रति-

पादन किया गया है। विचार के सचेत और संयत औदार्य के
लिये त्रिक्कुरल का भार एक ऐसा उदाहरण है कि जो बहुत
काल तक अनुपम बना रहेगा। कला की दृष्टि से भी संसार के
साहित्य में इसका स्थान ऊँचा है। क्योंकि, यह ध्वनि-काव्य है।
उपमायें और दृष्टान्त बहुत ही समुचित रखे गये हैं और इन
शैली व्यङ्ग पूर्ण है।

उत्तर भारतवासी देखेंगे कि इस पुस्तक में उत्तरी सभ्यता
और संस्कृति का तामिल जाति से कितना घनिष्ट सम्बन्ध और
तादात्म्य है। साथ ही त्रिक्कुरल दक्षिण की निजी विशेषता और
सौन्दर्य को प्रकट करता है। मैं आशा करता हूँ—राघवजी के
इस हिन्दी भाषान्तर के अध्ययन से कम से कम कुछ उत्साही
उत्तर भारतीयों के हृदयों में, भारत की संस्कृति सम्बन्धी एकता
के रचनात्मक विकास का महत्व जम जायगा, और इसी दृष्टि से
वे तामिल भाषा तथा उसके साहित्य का अध्ययन करने लग जायेंगे
जिससे वे त्रिक्कुरल और अन्य महान तामिल ग्रन्थों को मूल भाषा
में पढ़ सकें और उनके काव्य सौष्ठवों का रसास्वादन कर सकें कि
जो अनुवाद में कभी आ ही नहीं सकता।

गान्धी-आश्रम
तिरुचेनगोड्, मद्रास

सी० राजगोपालाचार्य

समर्पण

श्रीमान् मेवाड़ाधिपति, प्रताप के योग्य वंशधर, हिन्दू-सूर्य
महाराणा फतहसिंहजी की सेवा में:—

राजर्ष !

इस वीर-भूमि राजस्थान के अन्तस्तल मेवाड़ में मेरी अटूट भक्ति है, अनन्य श्रद्धा है; बचपन से ही मैं उसकी गुण-गाथा पर मुग्ध हूँ। अधिक क्या कहूँ, मेवाड़ मेरे हृदय का हरिद्वार, मेरे आत्मा की त्रिवेणी है।

मेरे लिये तो इतना ही बस था कि आप मेवाड़ के अधिवासी हैं, अधिपति हैं—उसी मेवाड़ के कि जिसने महाराणा प्रताप को जन्म दिया। पर, जब मुझे आपके जीवन का परिचय मिला तो मेरा हृदय श्रद्धा से उमड़ उठा।

मैं नहीं जानता कि आप कैसे नरेश हैं, पर, मैं मानता हूँ कि आप एक दिव्य पुरुष हैं। जो एक बार आपके चरित्र को सुनेगा, श्रद्धा और भक्ति से उसका मस्तक नत हुए बिना न रहेगा। ऐश्वर्य और चारित्र्य का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण तो सचमुच स्वर्ग के भी गौरव की चीज़ है।

स्वाभिमान और आत्म-गौरव से छक कर, निर्भय हो विचरण करने वाला, मध्यकालीन भारत का जीवन-प्राण, वह अलबेला क्षत्रियत्व आज यदि कहीं है तो केवल आप में। आप उस लुप्त-प्राय क्षात्र-तेज की जाज्वल्यमान अन्तिम राशि हैं।

ऐ भारत के गौरव-मन्दिर के अधिष्ठाता! आपने इस विपन्नकाल में भी हमारे तीर्थ की पवित्रता को नष्ट नहीं होने दिया, इसके लिये आप धन्य हैं! आप उन पुण्य चरित्र पूर्वजों के योग्य स्मारक हैं और आधुनिक भारत की एक पूजनीय सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं।

इस अकिञ्चन-हृदय की श्रद्धा को व्यक्त करने के लिये दक्षिणात्मक ऋषि की यह महार्थ-कृति अत्यन्त आदर के साथ आपके प्रतापी हाथों में समर्पित करने की आज्ञा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस पवित्र सम्पर्क से इस ग्रन्थ का गौरव और भी अधिक बढ़ जायगा।

राजपूती बाँकपन का दिलदादा—
क्षेमानन्द 'राहत'

भूमिका

(तामिल-वेद के सम्बन्ध में लोगों की राय)

The Prophets of the world have not emphasised the greatness and power of the Moral law with greater insistence or force; Bhishma or Kautilya or Kamandaka or Ramdas or Vishnu Sharman or Macchiavelli have no more subtle counsel to give on the conduct of the State; 'Poor Richard' has no wiser saw for the raising up of the businessmen; and Kalidasa or Shak-*espeare have no deeper knowledge of the lover's* heart and its varied moods; than this Pariah weaver of Mylapore !

V. V. S. Aiyar

मलयपुर के इस अछूत जुलाहे ने आचार-धर्म की महत्ता और शक्ति का जो वर्णन किया है, उससे संसार के किसी धर्म-संस्थापक का उपदेश अधिक प्रभावयुक्त या शक्तिप्रद नहीं है; जो तत्व इसने बतलाये हैं उनसे अधिक सूक्ष्म बात भीष्म या कौटिल्य, कामंदक या रामदास, विष्णुशर्मा या माइकेवेली ने भी

तामिल जाति

दक्षिण में, सागर के तट पर, भारतमाता के चरणों की पुजारिन के रूप में, अज्ञात काल से एक महान जाति निवास कर रही है जो 'तामिल' जाति के नाम से प्रख्यात है। यह एक अत्यन्त प्राचीन जाति है; और उसकी सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं के साथ खड़े होने का दावा करती है। उसका अपना स्वतंत्र साहित्य है, जो मौलिकता तथा विशालता में विश्व-विख्यात संस्कृत-साहित्य से किसी भाँति अपने को कम नहीं समझता। यह जाति बुद्धि-सम्पन्न रही है और आज भी इसका शिक्षित समुदाय मेधावी तथा अधिक बुद्धि-शाली होने का गर्व करता है।

इसमें सन्देह नहीं, नख से शिख तक सूफ़ियाना वज़अ की वेश-भूषा से सुसज्जित, तहज़ीब का दिलदादा 'हिन्दुस्तानी' जब किसी श्याम वर्ण के, तहमत बाँधे, अँगोछा ओढ़े, नंगे सिर और नंगे पैर, तथा जूड़ा बाँधे हुए मद्रासी भाई को देखता है, तब उस के मन में बहुत अधिक श्रद्धा का भाव जागृत नहीं होता। साधारणतः हमारे तामिल बन्धुओं का रहन-सहन और व्यवहार इतना सरल और आडम्बर रहित होता है और उनकी कुछ बातें इतनी विचित्र होती हैं कि साधारण यात्री को उनकी सभ्यता-

में कभी न सन्देह हो सकता है। किन्तु नहीं, इस मान्यता के भीतर एक निगूढ़ भावना है जिसने बाह्य आडम्बर की ओर अधिक दृष्टि-पात न कर के बौद्धिक उन्नति को अपना ध्येय माना है।

तामिल लोग प्रायः चतुर, परिश्रमी और श्रद्धालु होते हैं। इनकी व्यवहार-कुशलता, साहस और अध्यवसाय ने एक समय इन्हें समुद्र का शासक बना दिया था। इनकी नाविक-शक्ति प्रसिद्ध थी। अपने हाथ से बनाये हुए जहाजों पर सवार हो कर वे समुद्र-मार्ग से पूर्व और पश्चिम के दूर दूर देशों तक व्यापार के लिये जाते थे। इन्होंने, उसी समय हिन्द-महासागर के कई द्वीपों में उपनिवेश भी स्थापित किये थे। इनके झण्डे पर मछली का चिन्ह रहता था। यह शायद इसलिये चुना गया था कि वे अपने को मीन की ही भाँति जलयान-विद्या में प्रवीण बनाने के उत्सुक थे।

इनकी शिल्पकारी उन्नत दशा को प्राप्त थी। ज़री का काम अब भी बहुत अच्छा होता है। मदुरा के बने हुए कपड़े सारे भारत के लोग चाव से खरीदते हैं। सङ्गीत के तो वे ज्ञाता ही नहीं बल्कि आविष्कर्ता भी हैं। इनकी अपनी संगीत-पद्धति है जो उत्तर भारत में प्रचलित पद्धति से भिन्न है। वह सहज और सुगम तो नहीं, पर पाण्डित्य पूर्ण अवश्य है। हिन्दुस्थानी राग और गज़ल भी ये बड़े शौक से सुनते हैं। गृह-निर्माण कला में एक प्रकार का निरालापन है जो इनके बनाये हुए देवालयों में खास तौर पर प्रकट होता है। इनके देवालय खूब सुदृढ़ और विशाल

होते हैं, जिन्हें हम छोटा मोटा गढ़ कह सकते हैं। देवालयों के चारों ओर प्राचीर होता है; और सिंहद्वार बहुत ही भव्य बनाया जाता है। इस सिंहद्वार के ऊपर 'घंटे' के आकार का एक सुन्दर गुम्बद होता है, जिस में देवताओं आदि की मूर्तियाँ काट कर बनाई जाती हैं; और जिसे ये लोग 'गोपुरम्' के नाम से पुकारते हैं।

तामिल लोगों की वृत्ति धार्मिक होती है और उनकी भावनायें प्रायः भक्ति-प्रधान होती हैं। इन के त्योहार और उत्सव भक्तिरस में डूबे हुए होते हैं। प्रत्येक देवालय के साथ एक बड़ा भारी और बहुत ऊँचा रथ रहता है जिसमें उत्सव के दिन मूर्ति की स्थापना कर के उसका जुलूस निकालते हैं। रथ में एक रस्सा बाँध दिया जाता है, जिसे सैकड़ों लोग मिल कर खींचते हैं। लोग टोलियाँ बना कर गाते हुए जाते हैं और कभी २ गाते-गाते मस्त हो जाते हैं। देवमूर्ति के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं और कोई कान पर हाथ रख कर उठते बैठते हैं। जब आरती होती है, तब नाम-स्मरण करते हुए दोनों हाथों से अपने दोनों गालों को धीरे २ थपथपाने लगते हैं।

'तामिल नाडू'-यद्यपि प्राकृतिक सौन्दर्य से परिप्लावित हो रहा है, पर 'अय्यङ्गार' जाति को छोड़ कर शारीरिक सौन्दर्य इन लोगों में बहुत कम देखने में आता है। शारीरिक शक्ति में यह अब भी लार्ड मैकाले के ज़माने के बंगालियों के भाई ही बने हुए हैं। छोटी जातियों में तो साहस और बल पाया जाता है, पर अपने को ऊँचा समझने वाली जातियों में बल और पौरुष की बड़ी कमी है। चांवल इनका मुख्य आहार है और उसे ही यह 'अन्नम्' कहते हैं। गेहूँ का व्यवहार न होने के कारण अनेक प्रकार के

तवर्ग और पवर्ग के प्रथम और अन्तिम अक्षर ही तामिल वर्ण-माला में रहते हैं; प्रत्येक वर्ग के बीच के तीन अक्षर उसमें नहीं होते। उदाहरणार्थ क, ख, ग, घ, ङ के स्थान पर केवल क और ङ होता है ख, ग, घ, का काम 'क' से लिया जाता है। पर उसमें एक विचित्र अक्षर होता है जो न भारतीय भाषाओं में और न अरबी फ़ारसी में मिलता है। फ्रांसीसी से वह मिलता हुआ कहा जाता है और उसका उच्चारण 'र' और 'ज़' के बीच में होता है। पर सर्व साधारण ड़ की तरह उसका उच्चारण कर डालते हैं। तामिल भाषा में कठोर अक्षरों का प्रायः प्राधान्य है। प्राचीन और आधुनिक तामिल में भी अन्तर है। प्राचीन ग्रन्थों को समझने के लिये विशेषज्ञता की आवश्यकता है। तामिल भाषा का आधुनिक साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं की तरह वर्तमानकालीन विचार से भरा जा रहा है। पर प्राचीन साहित्य प्रायः धर्म-प्रधान है। तामिल सभ्यता और तामिल साहित्य के उद्गम की स्वतंत्रता के विषय में कुछ कहना नहीं; पर इसमें सन्देह नहीं कि आर्य-सभ्यता और आर्य-साहित्य की उन पर गहरी छाप है और आर्य-भावनाओं से वे इतने ओत-प्रोत हैं, अथवा यों कहिये कि दोनों की भावनाओं में इतना सामञ्जस्य है कि यह समझना कठिन हो जाता है कि इनमें कोई मौलिक अन्तर भी है। तामिल में कम्बन की बनाई हुई 'कम्बन रामायण' है जिसका कथानक तो वाल्मीकि से लिया गया है पर भावों की उच्चता और चरित्रों की सजीवता में वह कहीं कहीं, वाल्मीकि और तुलसी से भी बढ़ी-चढ़ी बताई जाती है। माणिक्य वाचक कृत तिरुवाचक भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पर तिरुवल्लुवर का कुरल अथवा त्रिकुरल जिसके

उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ही एकदम भुला दिया था। उनकी भावनाएँ, उनकी इच्छायें यहाँ तक कि उनकी बुद्धि भी उनके पति में ही लीन थी। पति की आज्ञा मानना ही उनका प्रधान धर्म था। विवाह करने से पूर्व तिरुवल्लुवर ने कुमारी वासुकी की आज्ञा-पालन की परीक्षा भी ली थी। वासुकी से कीलों और लोहे के टुकड़ों को पकाने के लिये कहा गया और वासुकी ने बिना किसी हुज्जत के, बिना किसी तर्क-वितर्क के वैसा ही किया। तिरुवल्लुवर ने वासुकी के साथ विवाह कर लिया और जब तक वासुकी जीवित रहीं, उसी निष्ठा और अनन्य श्रद्धा के साथ पति की सेवा में रत रहीं। तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ्य जीवन की प्रशंसा सुनकर एक सन्त उनके पास आये और पूछा कि विवाहित जीवन अच्छा है अथवा अविवाहित ? तिरुवल्लुवर ने इस प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर अपने पास कुछ दिन ठहर कर परिस्थिति का अध्ययन करने को कहा।

एक दिन सुबह को दोनों जने ठण्डा भात खा रहे थे जैसा कि गर्म देश होने के कारण मद्रास में चलन है। वासुकी उस समय कुँए से पानी खींच रही थी। तिरुवल्लुवर ने एकाएक चिल्लाकर कहा 'ओह! भात कितना गर्म है, खाया नहीं जाता।' वासुकी यह सुनते ही घड़े और रस्सी को एकदम छोड़ कर दौड़ पड़ी और पंखा लेकर हवा करने लगी। वासुकी के हवा करते ही उस रातभर के, पानी में रक्खे हुए ठण्डे भात से गरम गरम भाफ निकली और उधर वह घड़ा जिसे वह अधखिंचा कुँए में छोड़ कर चली आई थी, वैसा का वैसा ही कुँए के अन्दर अधर में लटका रह गया। एक दूसरे दिन सूर्य के तेज प्रकाश में, तिरु-

उसका कहना मानते हैं और वह शायद वन के अनुभव की बात थी।

वासुकी जब तक जीवित रहीं, बड़े आनन्द से उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया और उसके मरने के बाद वे संसार त्याग कर विरक्त की भाँति रहने लगे। कहा जाता है कि जीवन की सहचरी के कभी न मिटने वाले वियोग के समय तिरुवल्लुवर के मुख से एक पद निकला था जिसका आशय यह है:—

"ऐ प्रिये! तू मेरे लिये स्वादिष्ट भोजन बनाती थी और तूने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की! तू रात को मेरे पैर दबाती थी, मेरे सोजाने के बाद सोती थी और मेरे जागने से पहिले जाग उठती थी! ऐ सरले! सो तू क्या आज मुझेछोड़ कर जा रही है? हाय! अब इन आँखों में नींद कब आयेगी?"

यह एक तापस हृदय का रुदन है। सम्भव है, ऐसी स्त्री के वियोग पर भावुक-हृदय अधिक उद्वेग-पूर्ण, अधिक करुण-क्रन्दन करना चाहे, पर यह एक घायल आत्मा का संयत चीत्कार है जिसे अनुभव ही कुछ अच्छी तरह समझ सकता है। हाँ, वासुकी यदि देवी थी तो तिरुवल्लुवर भी निस्सन्देह संत थे। वासुकी के जीवन-काल में तो वह उसके थे ही पर उसकी मृत्यु के बाद भी उसका स्थान उसका ही बना रहा।

कुछ विद्वानों को इसमें सन्देह है कि तिरुवल्लुवर का जन्म अछूत जाति में हुआ। उनका कहना है कि उस समय आज कल के king's Steward के समान 'वल्लुवन' नाम का एक पद था और 'तिरु' सम्मानार्थ उपसर्ग लगाने से तिरुवल्लुवर नाम बन गया है। यह एक कल्पना है जिसका कोई विशेष आधार अभी तक

की भाँति जहाँ जो दिव्य रत्न मिला, उसे वहीं से ग्रहण कर अपने रत्न-भण्डार की अभिवृद्धि की। धर्म-पिपासु भ्रमर की भाँति उन्होंने इन मतों का रसास्वादन किया पर किसी पुष्प-विशेष में अपने को फँसने नहीं दिया बल्कि चतुरता के साथ सुन्दर से सुन्दर फूल का सार ग्रहण कर उससे अपनी आत्मा को प्रफुल्लित, आनन्दित और विकसित किया और अन्त में अपने उस सार-भूत ज्ञान-समुच्चय को अत्यन्त ललित और काव्य-मय शब्दों में संसार को दान कर गये।

एक बात बड़ी मजेदार है। हिन्दू-धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की तरह ईसाई लोगों ने भी यह दावा पेश किया है कि तिरुवल्लुवर के शब्दों में ईसा के उपदेशों की प्रतिध्वनि है और एक जगह तो कुरल के ईसाई अनुवादक महाशय, डा. पोप यहाँ तक कह उठे—"इसमें सन्देह नहीं कि ईसाई धर्म का उस पर सब के अधिक प्रभाव पड़ा था।" इन लोगों का ऐसा विचार है कि तिरुवल्लुवर की रचना इतनी उत्कृष्ट नहीं हो सकती थी यदि उन्होंने सेन्ट टामस से मयलापुर में ईसा के उपदेशों को न सुना होता। पर आश्चर्य तो यह है कि अभी यह सिद्ध होना बाकी है कि सेन्ट टामस और तिरुवल्लुवर का कभी साक्षात्कार भी हुआ था या नहीं। केवल ऐसा होने की सम्भावना की कल्पना करके ही ईसाई लेखकों ने इस प्रकार की बातें कही हैं और उनके ऐसा लिखने का कारण भी है, जो उनके लेखों से भी व्यक्त होता है। वह यह कि उनकी दृष्टि में ईसाई-धर्म ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है, और इतनी उच्चता और पवित्रता अन्यत्र कहीं मिल ही नहीं सकती। यह तो वे समझ ही कैसे सकते हैं कि भारत भी स्वतंत्र रूप से इतनी ऊँची कल्प-

accept the greater original. That there are startling coincidences between Buddhism and christianity, can not be denied and it must likewise be admitted that Buddhism existed atleast 400 years before christianity. I go even further and should feel extremly grateful if any body would point out to me the historical channels through which Buddhism had influenced early christianity. I have been looking for such channels all my life but I have found none."—Maxmuller's letter's on Buddhism.

इसका आशय यह है—"मैं आप से पूर्णतः सहमत हूँ और अपने विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि अपने जीवन भर मैंने उसी भावना से कार्य किया है कि जो आपके पत्र से व्यक्त होती है। यहाँ तक कि यदि आपके मित्रों में से कोई इस बात के प्रमाण दे सके जो कि मालूम होता है, उन्होंने आप से कही हैं अर्थात् 'क्रिश्चियानिटी एक महान् मूल धर्म की छोटी सी प्रति लिपि मात्र है' तो मैं उस महान् मूल-धर्म को सिर झुका कर स्वीकार कर लूंगा। इससे तो इन्कार किया ही नहीं जा सकता कि बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म में चौंका देने वाली समानता है और इसको भी स्वीकार ही करना पड़ेगा कि बौद्ध-धर्म क्रिश्चियनिटी से कम से कम ४०० वर्ष पूर्व मौजूद था। मैं तो यह भी कहता हूँ कि मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँगा यदि कोई मुझे उन ऐतिहासिक स्रोतों का पता देगा कि जिनके द्वारा प्रारम्भिक क्रिश्चियानिटी पर बौद्ध-

... तुम उनको पता नहीं मिला।"

बौद्ध-धर्म की प्रचार-शक्ति बड़ी जबरदस्त थी। बौद्धभिक्षु संघ संसार के महान् संगठनों का एक प्रबल उदाहरण है, जिसमें राजकुमार और राजकुमारियों तक आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अपने जीवन को अर्पित कर देते थे। अशोक की बहिन राजकुमारी सङ्घमित्रा ने सिंहलद्वीप में जाकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी थी। बर्मा, आसाम, चीन, और जापान में तो बौद्ध धर्म अब भी मौजूद है। पर पश्चिम में भी बौद्ध-भिक्षु अफ़ग़ानिस्तान, फारस और अरब तक भारत के प्राचीन धर्म के इस नवीन संस्करण का शुभ सन्देश लेकर पहुँचे थे। तब कौन आश्चर्य है यदि बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा प्रतिपादित उदात्त और उच्च धर्म-तत्वों के बीजों को पैलस्टाइन की उर्वरा भूमि ने अपने उदर में स्थान दे, नवीन धर्म-बालक को पैदा किया हो। बहरहाल यह निर्विवाद है कि क्षमा और अहिंसा आदि उच्च तत्वों की शिक्षा के लिये तिरुवल्लुवर को क्रिश्चियानिटी का मुँह ताकने की आवश्यकता न थी। उनका सुसंस्कृत सन्त-हृदय ही इन उच्च भावनाओं की स्फूर्ति के लिये उर्वर क्षेत्र था। फिर लाखों वर्ष की पुरानी, संसार की प्राचीन से प्राचीन और बड़ी से बड़ी संस्कृति उन्हें विरासत में मिली थी। जहाँ 'धृतिः क्षमा' और 'अहिंसा परमो धर्मः' उपकारिषु यः साधुः, साधुत्वे तस्य को गुणः। अपकारिषु यः साधु स साधुः सद्भिरुच्यते' आदि शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं।

रचना-काल

ऊपर कहा गया है कि एलेला शिङ्गन नाम का एक व्यापारी

प्रधान तिरुवल्लुवर का मित्र था। कहा जाता है कि यह शिङ्गन इसी नाम के चोल वंश के राजा का छठा वंशज था जो लगभग २०६० वर्ष पूर्व राज्य करता था और सिंहलद्वीप के महावंश से मालूम होता है कि ईसा से १४० वर्ष पूर्व उसने सिंहलद्वीप पर चढ़ाई की, उसे विजय किया और वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इस शिङ्गन और उसके उक्त पूर्वज के बीच में पाँच पीढ़ियें आती हैं और प्रत्येक पीढ़ी ५० वर्ष की मानें तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पहिली शताब्दि के लगभग कुरल की रचना हुई होगी।

परम्परा से यह जन-श्रुति चली आती है कि कुरल अर्थात् तामिल वेद पहिले पहिल पांड्य राजा 'उग्रवेरु वत्रदि' के राज्य-काल में मदुरा के कवि-समाज में प्रकाश में आया। श्रीमान् एम. श्रीनिवास अय्यङ्गर ने उक्त राजा का राज्यारोहण काल १२५ ईसवी के लगभग सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त तामिल वेद के छठे प्रकरण का पाँचवाँ पद 'शिलप्पधिकरम्' और 'मणि-मेखलै' नामक दो तामिल ग्रन्थों में उद्धृत किया गया है और ये दोनों ग्रन्थ, कुछ विद्वानों का कहना है कि ईसा की दूसरी शताब्दि में लिखे गये हैं। किन्तु 'चेरन-चेन-कुट्टवन' नामक ग्रन्थ के विषय में लिखते हुए श्रीमान् एम. राघव अय्यङ्गर ने यह बतलाया है कि उपरोक्त दोनों पुस्तकें सम्भवतः पाँचवीं शताब्दि में लिखी गई हैं।

इन तमाम बातों का उल्लेख करके श्रीयुत वी. वी. एस. अय्यर इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि पहली और तीसरी शताब्दि के मध्य में तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। उक्त दो ग्रन्थ यदि पाँचवीं शताब्दि

मैं कहे कि तब भी इस सिद्धान्त को कोई धक्का नहीं पहुँ- क्योंकि गहराई तो [illegible] बाद भी दिया जा सकता है । इ [illegible] देखेंगे कि [illegible] को [illegible] से देखते आये हैं, [illegible] लग १५०० वर्ष पहिले का पता लगा है और उसके [illegible] एक ऐसे सिद्धान्त [illegible] में लिखे जैन, वैष्णव, शैव, बौद्ध [illegible] ईसाई सभी अपना बताने के लिये लालायित हैं । किन्तु वे [illegible] के पन्थ में आबद्ध न होकर [illegible] [illegible] में विचरण करते रहे और वहीं से उन्होंने संसार को निर्मल निर्विकार रूप में अपना मधुर सन्देश सुनाया है ।

अन्तर-दर्शन

तामिल वेद में तिरुवल्लुवर ने धर्म, अर्थ और काम इन पु- रुषार्थ-त्रय पर पृथक् २ तीन प्रकरणों में ढंग से ढंग विच- अत्यन्त सूक्ष्म और सरस रूप में व्यक्त किये हैं। श्रीयुत वी. वी. एस. अय्यर ने कहा है—"महापुरुष के इस अद्भुत ग्रन्थ ने आचार-धर्म की महत्ता और शक्ति का जो वर्णन किया है, उससे संसार के किसी धर्म-संस्थापक का उपदेश अधिक प्रभावपूर्ण या शक्तिमय नहीं है; जो तत्त्व इसने बतलाये हैं, उनसे अधिक सूक्ष्म बात भीष्म या कौटिल्य, कामंदक या रामदास, विष्णुशर्मा या माइकेवेली ने भी नहीं कही है; व्यवहार का जो चातुर्य इसने बतलाया है, उससे अधिक " बेचारे रिचार्ड " के पास भी कुछ नहीं है; और प्रेमी के हृदय और उसकी नानाविध वृत्तियों पर जो प्रकाश इसने डाला है, उससे अधिक पता कालिदास या शेक्स- पियर को भी नहीं है !"

यह एक भक्त हृदय का उल्लास है और सम्भव है इसमें उछलते हुये हृदय की लालिमा का कुछ अधिक गहरा आभास आ गया हो। किन्तु जो बात कही गई है, उसके कहने का और सत्य के निकट-तम सामीप्य में ले जाने का, यह एक ही ढङ्ग है। जीवन को उच्च और पवित्र बनाने के लिये जिन तत्वों की आवश्यकता है उनका विश्लेषण धर्म के प्रकरण में आ गया है। राजनीति का गम्भीर विषय बड़ी ही योग्यता के साथ अर्थ के प्रकरण में प्रतिपादित हुआ है और गार्हस्थ्य प्रेम की सुस्निग्ध पवित्र आभा हमें कुरल के अन्तिम प्रकरण में देखने को मिलती है। * यह शायद बहुत बड़ी अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाय कि महान धर्म-ग्रन्थों को छोड़ कर संसार में बहुत थोड़ी ऐसी पुस्तकें होंगी कि जो इसके मुक़ाबिले की अथवा इससे बढ़ कर कही जा सकें। एरियल नामक अँग्रेज़ का कहना है कि कुरल मानवी विचारों का एक उच्चातिउच्च और पवित्र-तम उद्गार है। गोवर नाम के एक दूसरे योरोपियन का कथन है-'यह तामिल जाति की कविता तथा नीति-सम्बन्धी उत्कृष्टता का निरसन्देह वैसा ही ऊँचे से ऊँचा नमूना है जैसा कि यूनानियों में 'होमर' सदा रहा है।'

धर्म

तिरुवल्लुवर ने ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तावना के नाम से चार परिच्छेद लिखे हैं। पहिले परिच्छेद में ईश्वर-स्तुति की है और वहीं पर एक गहरे और सदा ध्यान में रखने लायक अमूल्य

---

* यह प्रकरण पृथक् सुन्दर और सचित्र रूप में प्रकाशित होगा।
—लेखक

से, किन्तु एक निर्भय और निष्ठावान हृदय को साथ लेकर जिसका अन्तिम लक्ष्य और कुछ नहीं केवल उसी शरारत के पुतले को जा पकड़ना है। मार्ग में एक से एक सुन्दर दृश्य हमें देखने को मिलेंगे जो हमें अपने ही में लीन हो जाने के लिये आकर्षित करेंगे। भाँति २ के रङ्गमञ्चों से उठी हुई स्वर-लहरियाँ हमें अपने साथ उड़ा ले जाने के लिये आ खड़ी होंगी। कितनी मिन्नत, कितनी खुशामद, कितनी चापलूसी होगी इनकी बातों में—किन्तु हमें न तो इनसे भयभीत होकर भागने की आवश्यकता है और न इन्हें आत्म-समर्पण ही करना है। बाग़ के किनारे खिला हुआ गुलाब का फूल सौन्दर्य और सुगन्ध को भेज कर पास से गुज़रने वाले योगी को आह्वान करता है किन्तु वह एक सुस्निग्ध दृष्टि डालता हुआ सदय मधुर मुस्क्यान के साथ चला जाता है। ठीक वैसे ही हमें भी इन प्रलोभनों के बीच में से होकर गुज़रना होगा।

इतना ही क्यों, यदि हमारा लक्ष्य स्थिर है, तो हम उस खिलाड़ी की कुछ लीलाओं का निर्दोष आनन्द भी ले सकते हैं और उसके कौशल को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जो लक्ष्य को भूल कर मार्ग में खेलने लगता है, उसे तो सदा के लिये गया समझो; किन्तु जिसका लक्ष्य स्थिर है, जिसके हृदय में प्रियतम से जाकर मिलने की सदा प्रज्वलित रहने वाली लगन है, वह किसी समय फिसलने वाली ज़मीन पर आकर फिसल भी पड़े, तब भी विशेष हानि नहीं। उसे फिसलता हुआ देख कर उसके साथी हँसेंगे, तालियाँ बजायेंगे, और तो और हमारे उस प्रभु के अधरों पर भी एक सदय मुस्क्यान आये बिना शायद न रहे, किन्तु वह धीरे

प्रस्तावना के चौथे तथा अन्तिम परिच्छेद में धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर कहते हैं:—

"अपना मन पवित्र रक्खो—धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है।" (४. ३४.)

सदाचार का यह गम्भीर सूत्र है। प्रायः काम करते समय हमारे मन में अनेकों सन्देह पैदा होते हैं उस समय क्या करें और क्या न करें इसका निश्चय करना बड़ा कठिन हो जाता है। गीता में भी कहा है—'किं कर्म किमकर्मेति, कवयोप्यत्र मोहिताः' (४. १६.) क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसका निर्णय करने में कवि अर्थात् बहुश्रुत विद्वान् भी मोह में पड़ जाते हैं। किसी ने कहा भी है—'स्मृतयोरनेकाः श्रुतयो विभिन्नाः। नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्'। अनेकों स्मृतियाँ हैं, श्रुतियाँ भी विभिन्न हैं और ऐसा एक भी ऋषि नहीं है जिसकी सभी बातें सभी समयों के लिये हम प्रमाण-स्वरूप मान लें'। ऐसी अवस्था में धर्माधर्म अथवा कर्माकर्म का निर्णय कर लेना बड़ा कठिन हो उठता है।

वास्तव में यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें मालूम होगा कि हम बड़े हों अथवा छोटे, बड़े भारी विद्वान् हों अथवा अत्यन्त साधारण मनुष्य। हम जब कभी भी जो कुछ भी काम करते हैं, अपने मन की प्रेरणा से ही करते हैं। मनुष्य जब किसी विषय का निर्णय करने चलता है तब वह उस विषय के विद्वानों की पक्ष-विपक्ष सम्मतियों को तोलता है और एक ओर निर्णय देता है, पर उसका निर्णय होता है उसी ओर जिस ओर उसका मन होता है क्योंकि वह उसी पक्ष को युक्तियों को अच्छी तरह समझ सकता है और उन्हीं को पसन्द

से सुसंस्कृत नहीं कर लिया है। क्या यह अवसर ही देखने में नहीं आता कि बड़े २ विद्वान् अपनी तर्क-सिद्ध बातों के विरुद्ध काम करते हुए पाये जाते हैं। इसका कारण और कुछ नहीं केवल यही है कि हम अच्छी बातों को बुद्धि से तो ग्रहण कर लेते हैं पर उन्हें मन में नहीं उतारते। इसलिये कोठे की तरह बुद्धि में ज्ञान भरते रहने की अपेक्षा हमें अपने मन को संस्कृत करने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

परन्तु मन की पूर्ण शुद्धि और पवित्रता एक दिन अथवा एक वर्ष का काम नहीं है। इसमें वर्षों और जन्मों के अभ्यास की आवश्यकता है। हम जब से दुनिया में आते हैं, जब से होश सम्हालते हैं, तब से हमारे मन पर संस्कार पड़ने शुरु हो जाते हैं। इसलिये पवित्रता और पूर्णता के तीर्थ की ओर जाने वाले यात्री को इसका सदा ध्यान रखने की आवश्यकता है। यह काम धीरे धीरे जरूर होता है पर शुरू हो जाने पर यह नष्ट नहीं होता, भगवान् कृष्ण स्वयं इसकी ज़मानत देते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥

कर्मयोग मार्ग में एक बार आरम्भ कर देने के बाद कर्म का नाश नहीं होता और विघ्न भी नहीं होते। इस धर्म का थोड़ा सा भी आचरण बड़े भय से संरक्षण करता है (गीता, अ० २ श्लो० ४०)

गृहस्थ का जीवन

ऋषि तिरुवल्लुवर ने धर्म-प्रकरण को दो भागों में विभक्त किया है। एक का शीर्षक है गृहस्थ का जीवन और दूसरा तपस्वी का

उँगली पकड़ कर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है, वही तो संसार के मतलब की चीज है। उसे देखकर स्वयं भगवान् अपनी कला अपनी कृति को कृतार्थ समझेंगे। हमारे दाक्षिणात्य ऋषि की घोषणा है—'देखो, गृहस्थ जो दूसरे लोगों को कर्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक-जीवन व्यतीत करता है, वह ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।' (४८) कितना स्पष्ट और बोझ से दबी हुई आत्माओं में आल्हादमयी आशा का संचार करने वाला है यह सन्देश! तिरुवल्लुवर वहीं पर कहते हैं— "मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करते हैं।" (४७)

गृहस्थ-आश्रम की नींव में दो ईंटें हैं—स्त्री और पुरुष। इन दोनों में जितनी परिपक्वता, एकात्मीयता होगी, ये दोनों एक दूसरी से जितनी अधिक सटी हुई होंगी, आश्रम की इमारत उतनी ही सुदृढ़ और मजबूत होगी। इन दोनों ही के अन्तःकरण धार्मिकता की अग्नि में पक कर यदि सुदृढ़ बन गये होंगे तो तूफ़ान पर तूफ़ान आयेंगे पर उनका कुछ न बिगाड़ सकेंगे। गार्हस्थ्य-धर्म में स्त्री का दर्जा बहुत ऊँचा है। वास्तव में उसके आगमन से ही गृहस्थ-जीवन का सूत्रपात होता है। इसीलिये गृहस्थ-आश्रम की चर्चा कर चुकते ही तिरुवल्लुवर ने एक परिच्छेद सहधर्मचारिणी के वर्णन पर लिखा है। तिरुवल्लुवर चाहते हैं कि सहधर्मचारिणी में सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों। (५१) स्त्री यदि स्त्रीत्व के गुणों से रहित है तो गार्हस्थ्य-जीवन व्यर्थ है। स्त्री यदि सुयोग्य है तो फिर किसी बात का अभाव नहीं। किन्तु स्त्री के अयोग्य होने पर सब कुछ घर में होते हुए भी मनुष्य के पास

वीरता और दृढ़ता जैसे पौरुष-सूचक कार्यों के लिये स्त्रियाँ ही पैदा हुई हैं। पुरुष निरे निकम्मे और थोदे होते हैं। इसीलिये लड़की पैदा होने पर वे खुशी मनाते और लड़के को जन्मते ही प्रायः मार डालते—

पुरुषों की उपर्युक्त अवस्था निस्सन्देह अवाञ्छनीय और दयनीय है पर भारत के उच्च वर्गों की स्त्रियों की वर्तमान अपङ्गता भी उतनी ही निन्दनीय है। वांछनीय अवस्था तो यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे को प्रेम-पूर्वक सहायता देते हुए पूर्ण बनने की चेष्टा करें। यह सच है, प्रेम में छुटाई बड़ाई नहीं होती। प्रेम में तो दोनों ही एक दूसरे को आत्म-समर्पण कर देते हैं पर लोक-संग्रह के लिये, गृहस्थी का काम चलाने के लिये यह आवश्यक हो उठता है कि दो में से एक दूसरे की अधीनता स्वीकार करे और वह अधीनता जब प्रेम-रस से सनी हुई होगी तो पराकाष्ठा को पहुँचे बिना न रहेगी; पर यह प्रेमाभिव्यक्ति नितान्त समर्पण उन्नति में बाधक होने के बजाय दोनों ही के कल्याण का कारण बन जाता है। ऐसी अवस्था में, संसार की स्थिति और भारत की संस्कृति का ध्यान रखते हुए यही ठीक जँचता है कि तिरुवल्लवर के उपर्युक्त आदर्श के अनुसार ही व्यवहार करें।

स्त्री, सुकोमल भावनाओं की प्रतिमूर्ति है; आत्म-त्याग और सहन-शीलता की देवी है। यह उसी से निभ सकता है कि हीन से हीन मनुष्य को देवता मान कर उसकी पूजा कर सके। 'अन्ध बधिर रोगी अति कोढ़ी' आदि विशेषणों वाले पति का भी अपमान न करने का जो उपदेश तुलसीदास जी ने दिया है वह निस्सन्देह बहुत बड़ा है किन्तु यदि संसार में ऐसी कोई स्त्री है कि जो इस

संस्कार पड़ जाते हैं, वे स्थायी और बड़े ही प्रबल होते हैं। इस-
लिये योग्य सन्तान पैदा करने की इच्छा रखने वालों को चाहिये
कि वे जैसी सन्तान चाहते हैं, वैसी भावनाओं और वैसे गुणों
को अपने अन्दर आश्रय दें और बालक के गर्भ में आने के बाद
कोई ऐसी चेष्टा न करें जो बुरी हो। एक बात और है जिसे
हम प्रायः भूल जाते हैं। लोग समझते हैं कि बालक तो बालक
ही है, वह कुछ सुनता-समझता थोड़े ही है। इसीलिये जो बातें
हम समझदार आदमियों के सामने करना पसन्द नहीं करेंगे,
उन्हें छोटे २ बच्चों की मौजूदगी में करने में ज़रा भी नहीं
हिचकते।

वास्तव में यह बड़ी भारी भूल है, जिसके कारण बच्चों के
विकास पर अज्ञात रूप से भयङ्कर आघात हो रहा है। बच्चे
देखने में निर्दोष और भोले-भाले अवश्य हैं पर संस्कार ग्रहण
करने की उनमें बड़ी जबरदस्त और अद्भुत शक्ति है। वे जो
कुछ देखते और सुनते हैं, उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभाव उनपर पड़े
बिना नहीं रहता जो आगे चलकर प्रबल बन जाता है। इसलिये
यदि बालक अनन्य भाव से अपने खिलौने के साथ खेलने में
मग्न हो या चारपाई पर पड़ी हुई किताब को फाड़ने के महान प्रयास
में व्यस्त हो तो यह न समझें कि वह निरा बालक है, वह हमारी
बातें समझ नहीं सकता; बल्कि वास्तव में यदि यह इच्छा है कि
हमारे बालक पर कोई बुरा संस्कार न पड़े तो यह समझ लें
कि यह बालक नहीं है स्वयं भगवान बालक का रूप धारण करके
हमारी बातों को देखने और सुनने के लिये आ बैठे हैं।

कन्या-बालक का उपरोल्लिखित सिद्धान्त महान है, भगवान

ने कृपा करके उन्हें पालना ही गुल्मिस्ता भी बना दिया है। बच
प्रेम अलौकिक है। यह हमारे हृदय की कठोरता, दुर्बलता
परिम्लानि को दूर करके उसे पावन और पवित्र बना देता
बच्चे मानो चलते-फिरते, हँसने-बोलने खिलौने हैं। यह कठ
कठपुतलियाँ हमारा दिल बहलाने के लिये भगवान् ने भेजी हैं
जब हम ऊषा की पवित्र आभा को देखते हैं, जब हम गुलाब की
सुगुप्तगी और ताजगी से प्रभावित होते हैं, जब बुलबुल की
मनोमोहक स्वर-लहरी पर हमारे कान अनायास ही आकर्षित
जाते हैं, तब हम समझते हैं कि क्यों भगवान् ने इन सब गुण
का एक ही जगह, हमारे बच्चों में, समावेश कर दिया है। "बंसी
की ध्वनि प्यारी और सितार का स्वर मीठा है—ऐसा वही लोग
कहते हैं जिन्होंने अपने बच्चों की तुतलाती हुई बोली नहीं सुनी
है।" (६६) तिरुवल्लुवर बहुत ठीक कह गये हैं "बच्चों
स्पर्श शरीर का सुख है और कानों का सुख है उनकी बोली
सुनना" (६५) यह हमारे अनन्य परिश्रम का अनन्य पारितो
पिक है। पर यह पारितोषिक इसीलिये दिया गया है कि ह
अपने उत्तरदायित्व को ईमान्दारी के साथ निभावें।

सन्तान का क्या कर्तव्य है? इस महान् गूढ़ तत्व को तिरुव-
ल्लुवर अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु वैसे ही स्पष्ट रूप में कहते हैं—

"पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य क्या है? यही कि संसार
उसे देखकर उसके पिता से पूछे—किस तपस्या के बल से तुम्हें
ऐसा सुपुत्र प्राप्त हुआ है?"

सद्गृहस्थ के गुण

मनुष्य किस प्रकार अपने को उच्च और सफल सद्गृहस्थ

बना सकता है, उस मार्ग का दिग्दर्शन अगले परिच्छेदों में कराया गया है। तिरुवल्लुवर इन सद्गुणों में सब से पहिले प्रेम को चर्चा करते हैं, मानों यह सब गुणों का मूल-स्रोत है। जो मनुष्य प्रेम के रहस्य को समझता है और जो प्रेम करना जानता है उसे आत्मा को उच्च बनाने वाले अन्य सद्गुण अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। तिरुवल्लुवर का यह कथन अनूठा है—"कहते हैं, प्रेम का मज़ा चखने ही के लिये आत्मा एक बार फिर अस्थि-पिञ्जर में बन्द होने के लिये राज़ी हुआ है।" बुरों के साथ भी प्रेममय व्यवहार करने का ही उनका अनुरोध है। (७६) कृतज्ञता का उपदेश देते हुए वे कहते हैं—"उपकार को भूल जाना नीचता है; किन्तु यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको फ़ौरन ही भुला देना शराफ़त की निशानी है।" (१०८) आत्म-संयम के विषय में गृहस्थ को व्यावहारिक उपदेश दिया है। यह बिलकुल सच है—"आत्म-संयम से स्वर्ग प्राप्त होता है, किन्तु असंयत इन्द्रिय-लिप्सा रौरव नरक के लिये खुला राज-मार्ग है"। (१२१) सदाचार पर ख़ासा ज़ोर दिया है। पृथ्वी की तरह क्षमावान होना चाहिये, क्षमा, तपश्चर्या से भी अधिक महत्व-पूर्ण है। बहुत से ऐसे तपस्वी हुए हैं जो ज़रा २ सी बात पर नाराज़ होकर दूसरे का नाश करने के लिये अपने तप का ह्रास कर बैठे हैं। तिरुवल्लुवर कहते हैं—"संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वे हैं जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु-वाणी को सहन कर लेते हैं"। (१५९) आगे चल कर ईर्ष्या न करना, चुगली न खाना, पाप-कर्मों से डरना आदि उपदेश हैं। गृहस्थ-जीवन के अन्त में कीर्ति का सात्विक प्रलोभन देकर, मनुष्यों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने का

जिसका बाह्य तो सुन्दर होता है पर दिल काला होता है। तिरुवल्लुवर चेतावनी देते हुए कहते हैं—'तीर सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ टेढ़ापन होता है, इस लिये आदमियों को सूरत से नहीं बल्कि उनके कामों से पहिचानो।" (२६९)

तिरुवल्लुवर सत्य को बहुत ऊँचा दर्जा देते हैं। एक जगह तो वह कहते हैं—"मैंने इस संसार में बहुत सी चीजें देखी हैं, मगर मैंने जो चीजें देखी हैं उनमें सत्य से बढ़ कर और कोई चीज नहीं है।" (२८०) पर तिरुवल्लुवर ने सत्य का जो लक्षण बताया है, वह कुछ अनूठा है और महाभारत में वर्णित 'यद्भूतहितमत्यन्तं, एतत्सत्यं मतं मम' से मिलता जुलता है। तिरुवल्लुवर पूछते हैं—"सच्चाई क्या है"? और फिर उत्तर देते हुए कहते हैं, "जिससे दूसरों को किसी तरह का जरा भी नुकसान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है।" (२७१) मुझे भय है कि सत्य का यह लक्षण लोगों को प्रायः मान्य न होगा। पर तिरुवल्लुवर यहीं नहीं रुक जाते, वह तो एक कदम और आगे बढ़ कर कहते हैं—"उस झूठ में भी सच्चाई की खासियत है जिसके फल-स्वरूप सरासर नेकी ही होती हो"। (२७२) तिरुवल्लुवर शब्दों में नहीं, सजीव भावना में सत्य की स्थापना करते हैं। जो लोग कड़वी और दूसरों को हानि पहुँचाने वाली बात कहने से नहीं चूकते, बल्कि मन में अभिमान करके कहते हैं, 'हमने तो जो सत्य बात थी वह कह दी।' वह यदि तिरुवल्लुवर द्वारा वर्णित सत्य के लक्षण पर किञ्चित् ध्यान देंगे तो अनुचित न होगा। प्रायः लोग 'सत्य' को ही इष्ट देवता मानते हैं पर तिरुवल्लुवर सत्य को संसार में सब से बड़ी चीज़ मानते हुए

अर्थ

इस प्रकरण में तिरुवल्लुवर ने विस्तारपूर्वक राजा और राज्य-तन्त्र का वर्णन किया है। कवि की दृष्टि में यह विषय कितना महत्वपूर्ण है, यह इसीसे जाना जा सकता है कि अर्थ का प्रकरण धर्म के प्रकरण से दुगना और काम के प्रकरण से लगभग तिगुना है। राजा और राज्य के लिये जो बातें आवश्यक हैं, उनका व्यावहारिक ज्ञान इसके अन्दर मिलेगा। यदि नरेश इस ग्रन्थ का अध्ययन करें और राज-कुमारों को इसकी शिक्षा दिलायें तो उन्हें लाभ हुए बिना न रहे। मद्रास प्रान्त के राजा और जमींदार विधिपूर्वक इस ग्रन्थ का अध्ययन करते और अपने बच्चों को पढ़ाते थे। राज-काज से जिन लोगों का सम्पर्क है, उन्हें अर्थ के प्रकरण को एक बार देख जाना आवश्यक है।

"नरेशों और खास कर होनहार राजकुमारों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि वे मनुष्य हैं। जिनकी सेवा के लिये भगवान् ने उन्हें भेजा है वे स्वयं भी उन्हीं में के हैं। उनका सुख-दुख, उनका हानि-लाभ अपना सुख-दुख और अपना हानि-लाभ है। आज बाल्य-काल से ही उनके और उनके साथियों के बीच में जो भिन्नता की भींत खड़ी कर दी जाती है, वह सुखकर हो ही कैसे सकती है? यह याद दिलाने की जरूरत नहीं कि भारतवर्ष के उत्कर्ष-काल में राजकुमार लँगोट बन्द ब्रह्मचारियों की भाँति ऋषियों के आश्रम में विद्याध्ययन करने जाते थे और वहाँ के पवित्र वायु-मण्डल में रहकर शरीर, बुद्धि और आत्मा इन तीनों को विकसित और पुष्ट करते थे। किन्तु आज अस्वाभाविक और विकृत वाता-

की चेष्टा करते हैं और पूर्वजों की वीर आत्मायें उन्हें तड़फड़ा कर आह्वान करती हैं; किन्तु हाय ! यहाँ सुनता कौन है ? सुनकर समझने की और उठकर चलने की अब शक्ति भी कहाँ है ?

उस दिन एक विद्वान् और प्रतिष्ठित नरेश को मैं तामिल वेद के कुछ उद्धरण सुना रहा था। 'वीर योद्धा का गौरव' शीर्षक परिच्छेद सुनकर उन्होंने एक दोहा कहा जिसे मैंने तत्काल उनसे पूछकर लिख लिया कि कहीं भूल न जाऊँ। किन्तु किसी पुरुष-चरित्र चारण का बनाया हुआ वह प्यारा प्यारा पद्य मेरे दिमाग़ से ऐसा चिपका कि फिर भुलाये से भी न भूला। अपने स्थान पर पहुँच कर न जाने कितनी बार मन ही मन मैंने उसे गुनगुनाया और न जाने कितनी बार अपने को भूल कर उसे गाया। मैं गाता था और मेरी चिर-सहचरी कल्पना अभी अभी बीते हुए गौरवशाली राजपूती ज़माने की वीरता को रङ्ग से रंगे हुए चित्रों को चित्रित करती जाती थी। आहा, कैसे सुन्दर, कैसे पवित्र और हृदय को उन्मत्त बना देने वाले थे वे दृश्य। मैं मस्त था और मुझे होश आया उस समय कि जब दरबान ने आकर ख़बर दी कि दीवान साहब मिलने आये हैं।

वह पद्य क्या है, राजपूती हृदय की आन्तरिक वीर भावना का प्रकाश है। महावर लगाने के लिये उद्यत नाइन से एक नव-विवाहिता राजपूत-बाला कहती है—

> नाइन आज न मांड पग, काल सुणाजे जंग।
> धारा लागे सो धणी, तब दीजै घण रंग॥

'अरी नाइन ! सुनते हैं कि कल युद्ध होने वाला है, तब फिर आज यह महावर रहने दे। जब मेरे पति-देव युद्ध-क्षेत्र में वीरता

श्रद्धा-भाजन ग्रन्थ भारत की राष्ट्र-भाषा में अनुवादित होकर हिन्दी-जनता के सामने उपस्थित हो रहा है।

इस ग्रन्थ की भूमिका श्रीयुत सी. राजगोपालाचार्य ने हमारे निवेदन को स्वीकार कर लिख दी है। आप उसे लिखने के पूर्ण अधिकारी भी थे। अतः हम आपको इस कृपा के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं।

यह ग्रन्थ-रत्न जितना ऊँचा है, उसीके अनुकूल किसी ऊँची आत्मा के द्वारा हिन्दी-जनता के सामने रक्खा जाता, तो निस्सन्देह यह बहुत ही अच्छा होता, पर इसके मनन और घनिष्ठ संसर्ग से मुझे लाभ हुआ है और इसलिये मैं तो अपनी इस अनधिकार चेष्टा का कृतज्ञ हूँ। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु पाठकों को भी इससे अवश्य आनन्द और लाभ होगा। पर मेरे अज्ञान और मेरी अत्यन्त क्षुद्र शक्तियों के कारण इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों, उनके लिये सहृदय विद्वान् मुझे क्षमा करें।

राजस्थान हिन्दी सम्मेलन
अजमेर।
१७-१२-१९२६

मातृ-भाषा का अकिञ्चन सेवक
क्षेमानन्द 'राहत'

लागत का ब्योरा

कागज़				
छपाई	...	...	...	४३०)
बाइंडिंग	...	...	...	३२०)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च			...	६०) ,
				४५५) „
				१२६५) रु०

बढ़िया कागज़ पर छपी हुई १५०० प्रतियों का लागत मूल्य ७
साधारण कागज़ पर छपी हुई „ „ „ ५।
कुल प्रतियाँ ३०००
लागत मूल्य राजसंस्करण प्रति संख्या ।ॾ)
लागत मूल्य साधारण संस्करण प्रति संख्या ।=)

आदर्श पुस्तक-भण्डार

हमारे यहाँ दूसरे प्रकाशकों की उत्तम, उपयोगी और सु
हुई हिन्दी पुस्तकें भी मिलती हैं। गन्दे और चरित्र-नाशक
उपन्यास, नाटक आदि पुस्तकें हम नहीं बेचते। हिन्दी पुस्तकें
मँगाने की जब आपको ज़रूरत हो तो इस मण्डल के नाम
आर्डर भेजने के लिये हम आपसे अनुरोध करते हैं क्योंकि बा
पुस्तकें भेजने में यदि हमें व्यवस्था का खर्च निकाल कर कुछ
बच रही तो वह मण्डल की पुस्तकें और भी सस्ती करने में
लगाई जायगी।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर।

विषय-सूची

द्वितीय खण्ड—राजतन्त्र

विषय	पृष्ठ

तामिल वेद

दूसरा परिच्छेद

मेघ-स्तुति

१. समय पर न चूकने वाली वर्षा के द्वारा ही धरती अपने को धारण किये हुए है और इसीलिए, मेह को लोग अमृत कहते हैं।

२. जितने भी स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ हैं, वे सब वर्षा ही के द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते हैं; और वह स्वयं भी भोजन का एक अंश है।

३. अगर पानी न बरसे तो सारी पृथ्वी पर अकाल का प्रकोप छा जाये; यद्यपि वह चारों तरफ समुद्र से घिरी हुई है।

४. यदि स्वर्ग के सोते सूख जाँय तो किसान लोग हल जोतना ही छोड़ देंगे।

५. वर्षा ही नष्ट करती है, और फिर यह वर्षा ही है जो नष्ट हुए लोगों को फिर से सर सब्ज़ करती है।

६. अगर आस्मान से पानी की बौछारें आना बन्द हो जायँ तो घासका उगना तक बन्द हो जायगा।

तीसरा परिच्छेद

संसार-त्यागी पुरुषों की महिमा

१. देखो, जिन लोगों ने सब-कुछ (इन्द्रिय-सुखों को) त्याग दिया है, और जो तापसिक जीवन व्यतीत करते हैं, धर्मशास्त्र उनकी महिमा को और सब बातों से अधिक उत्कृष्ट बतलाते हैं।

२. तुम तपस्वी लोगों की महिमा को नहीं नाप सकते। यह काम उतना ही मुश्किल है जितना सब मुर्दों की गणना करना।

३. देखो, जिन लोगों ने परलोक के साथ इहलोक का मुक़ाबिला करने के बाद इसे त्याग दिया है; उनकी ही महिमा से यह पृथ्वी जगमगा रही है।

४. देखो, जो पुरुष अपनी सुदृढ़ इच्छा-शक्ति के द्वारा अपनी पाँचों इन्द्रियों को इस तरह वश में रखता है, जिस तरह हाथी अंकुश द्वारा वशीभूत किया जाता है; वास्तव में वही स्वर्ग के खेतों में बोने योग्य बीज है।

५. जितेन्द्रिय पुरुष की शक्ति का साक्षी स्वयं देवराज इन्द्र है।*

---

* गौतम की स्त्री अहल्या और इन्द्र की कथा।

६. महान् पुरुष वही हैं, जो असम्भव * कार्यों का सम्पादन करते हैं और दुर्बल मनुष्य वे हैं, जिन से वह काम हो नहीं सकता।

७. देखो; जो मनुष्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पाँच इन्द्रिय-विषयों का यथोचित मूल्य समझता है, वह सारे संसार पर शासन करेगा। †

८. संसार भर के धर्म-ग्रन्थ सत्यवक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं।

९. त्याग की चट्टान पर खड़े हुए महात्माओं के क्रोध को एक क्षण भर भी सह लेना असम्भव है।

१०. साधु-प्रकृति पुरुषों ही को ब्राह्मण कहना चाहिये। वही लोग सब प्राणियों पर दया रखते हैं। ‡

---

* इन्द्रिय-दमन।

† अर्थात् जो जानते हैं कि ये सब विषय क्षणिक सुख देने वाले हैं-मनुष्य को धर्म-मार्ग से बहकाते हैं और इस लिये उनके फंदे में नहीं फँसते हैं।

‡ मूल ग्रन्थ में ब्राह्मण वाची जिस शब्द का प्रयोग किया गया, उसका अर्थ ही यह है, सब पर दया करने वाला।

चौथा परिच्छेद

धर्म की महिमा का वर्णन

१. धर्म से मनुष्य को मोक्ष मिलता है, और उससे धर्म की प्राप्ति भी होती है; फिर भला, धर्म से बढ़ कर, लाभदायक वस्तु और क्या है ?

२. धर्म से बढ़ कर दूसरी और कोई नेकी नहीं, और उसे भुला देने से बढ़ कर दूसरी कोई बुराई भी नहीं है।

३. नेक काम करने में तुम लगातार लगे रहो, अपनी पूरी शक्ति और सब प्रकार से पूरे उत्साह के साथ उन्हें करते रहो।

४. अपना मन पवित्र रक्खो; धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है। बाक़ी और सब बातें कुछ नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र हैं।

५. ईर्ष्या, लालच, क्रोध और अप्रिय वचन इन सब से दूर रहो। धर्म-प्राप्ति का यही मार्ग है।

प्रथम भाग

धर्म

प्रथम खण्ड

पाँचवाँ परिच्छेद

पारिवारिक जीवन

१. गृहस्थ आश्रम में रहने वाला मनुष्य अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है।

२. गृहस्थ अनाथों का नाथ, गरीबों का सहायक और निराश्रित मृतकों का मित्र है।

३. मृतकों का श्राद्ध करना, देवताओं को बलि देना, आतिथ्य-सत्कार करना, बन्धु-बान्धवों को सहायता पहुँचाना और आत्मोन्नति करना—ये गृहस्थ के पाँच कर्म हैं।

४. जो पुरुष बुराई करने से डरता है और भोजन करने से पहिले दूसरों को दान देता है; उसका वंश कभी निर्बीज नहीं होता।

५. जिस घर में स्नेह और प्रेम का निवास है, जिसमें धर्म का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतः सन्तुष्ट रहता है—उसके सब उद्देश्य सफल होते हैं।

६. अगर मनुष्य गृहस्थ के धर्मों का उचित रूप में पालन करे, तब उसे दूसरे धर्मों का आश्रय लेने की क्या जरूरत है ?

७. मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं, जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हैं।

८. देखो, गृहस्थ, जो दूसरे लोगों को कर्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।

९. सदाचार और धर्म का विशेषतः विवाहित जीवन से सम्बन्ध है, और सुयश उसका आनुषंगिक है *।

१०. जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है कि जिस तरह उसे करना चाहिये, वह मनुष्यों में देवता समझा जायगा।

---

* दूसरा अर्थ - गार्हस्थ्य जीवन ही वास्तव में धार्मिक जीवन है और संन्यास जीवन भी अच्छा है, यदि कोई उसे भंग न करे, जिससे लोग घृणा करें।

छठा परिच्छेद

सहधर्मिणी

१. वही नेक सहधर्मिणी है जिसमें सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों और जो अपने पति के सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती * ।

२. यदि स्त्री स्त्रीत्व के गुणों से रहित हो तो और सब नियामतों (श्रेष्ठ वस्तुओं) के होते हुए भी गार्हस्थ्य जीवन व्यर्थ है ।

३. यदि किसी की स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौन सी चीज है जो उसके पास मौजूद नहीं ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो, फिर उसके पास है ही क्या चीज † ?

४. स्त्री अपने सतीत्व की शक्ति से सुरक्षित हो तो दुनिया में, उससे बढ़कर, शानदार चीज और क्या है ?

---

* सामार्या या गृहेदक्षा, सामार्या या प्रजावती ।
सामार्या या पति-प्राणा, सामार्या या पतिव्रता ॥

† यदि स्त्री सुयोग्य हो तो फिर ग़रीबी कैसी ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो फिर अमीरी कहाँ ?

सातवाँ परिच्छेद

सन्तति

१. बुद्धिमान सन्तति पैदा होने से बढ़ कर दूसरी नियामत हम नहीं जानते।

२. वह मनुष्य धन्य है जिसके बच्चों का आचरण निष्कलङ्क है—सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू न सकेगी।

३. सन्तति मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति है; क्योंकि वह अपने सञ्चित पुण्य को अपने कर्मों द्वारा उसके अर्पण कर देती है।

४. निस्सन्देह अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट वह साधारण "रसा" है जिसे अपने बच्चे छोटे छोटे हाथ डाल कर घँघोलते हैं।

५. बच्चों का स्पर्श शरीर का सुख है और कानों का सुख है उनकी बोली को ...

६. बंशी की ध्वनि ... मीठा है; ऐसा ...

आठवाँ परिच्छेद

प्रेम

१. ऐसा डेरा अथवा डंडा कहाँ है जो प्रेम के दरवाज़े को बन्द कर सके ? प्रेमियों की आँखों के सुललित अश्रु-बिन्दु अवश्य ही उसकी उपस्थिति की घोषणा किये बिना न रहेंगे।

२. जो प्रेम नहीं करते, वे सिर्फ अपने ही लिये जीते हैं, मगर वे जो दूसरों को प्यार करते हैं, उनकी हड्डियें भी दूसरों के काम आती हैं।

३. कहते हैं कि प्रेम का मज़ा चखने के ही लिये आत्मा एक बार फिर अस्थि-पिञ्जर में बन्द होने को राजी हुआ है।

४. प्रेम से हृदय स्निग्ध हो उठता है और उस स्नेहशीलता से ही मित्रता रूपी बहुमूल्य रत्न पैदा होता है।

५. लोगों का कहना है कि भाग्यशाली का सौभाग्य—इस लोक और परलोक दोनों स्थानों में—उसके निरन्तर प्रेम का ही पारितोषिक* है।

---

* इहलोक और परलोक दोनों स्थानों में।

नवाँ परिच्छेद

मेहमानदारी

१. बुद्धिमान लोग, इतनी मेहनत करके, गृहस्थी किस लिये बनाते हैं ? अतिथि को भोजन देने और यात्री की सहायता करने के लिये ।

२. जब घर मे मेहमान हो तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिये ।

३. घर आये हुए अतिथि का आदर-सत्कार करने में जो कभी नहीं चूकता, उस पर कभी कोई आपत्ति नहीं आती ।

४. देखो; जो मनुष्य योग्य अतिथि का प्रसन्नता-पूर्वक स्वागत करता है, उसके घर में निवास करने से लक्ष्मी को आह्लाद होता है !

५. देखो; जो आदमी पहले अपने मेहमान को खिलाता और उसके बाद ही, जो कुछ बचता है, खुद खाता है; क्या उसके खेत को बोने की भी जरूरत होगी ?

दसवाँ परिच्छेद

मृदु-भाषण

१. सत्पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्निग्ध होती है क्योंकि वह दयार्द्र, कोमल और बनावट से खाली होती है।

२. औदार्यमय दान से भी बढ़ कर, सुन्दर गुण, वाणी की मधुरता और दृष्टि की स्निग्धता तथा स्नेहार्द्रता में है।

३. हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी स्निग्ध दृष्टि के अन्दर ही धर्म का निवासस्थान है।

४. देखो; जो मनुष्य सदा ऐसी वाणी बोलता है कि जो सब के हृदयों को आह्लादित कर दे, उसके पास दुःखों की अभिवृद्धि करने वाली दरिद्रता कभी न आयेगी।

५. नम्रता और स्नेहार्द्र वक्तृता, बस, केवल यही मनुष्य के आभूषण हैं, और कोई नहीं।

६. यदि तुम्हारे विचार शुद्ध और पवित्र हैं और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है तो तुम्हारी पापवृत्ति का क्षय हो जायगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी।

७. सेवा-भाव को प्रदर्शित करने वाला और विनम्र वचन मित्र बनाता है और बहुत से लाभ पहुँचाता है।

८. वे शब्द जो कि सहृदयता से पूर्ण और क्षुद्रता से रहित होते हैं; इहलोक और परलोक दोनों ही जगह लाभ पहुँचाते हैं।

९. श्रुति-प्रिय शब्दों के अन्दर जो मधुरता है, उसका अनुभव कर लेने के बाद भी मनुष्य क्रूर शब्दों का व्यवहार करना क्यों नहीं छोड़ता ?

१०. मीठे शब्दों के रहते हुए भी जो मनुष्य कड़वे शब्दों का प्रयोग करता है वह मानो पके फल को छोड़कर कच्चा फल खाना पसन्द करता है।*

---

* श्रीयुत वी० वी० एस अय्यर ने इस पद का अर्थ इस प्रकार किया है:—देखो जो आदमी मीठे शब्दों से काम चल जाने पर भी कठोर शब्दों का प्रयोग करता है, वह पक्के फल की अपेक्षा कच्चा फल पसंद करता है।

कहावत है:—
'जो गुड़ दीन्हें ही मरे, क्यों विष दीजे ताहि !'

ग्यारहवाँ परिच्छेद

कृतज्ञता

१. एहसान करने के विचार से रहित होकर जो दया दिखायी जाती है; स्वर्ग और मर्त्य दोनों मिल कर भी उसका बदला नहीं चुका सकते।

२. ज़रूरत के वक्त जो मेहरबानी की जाती है वह देखने में छोटी भले ही हो; मगर वह तमाम दुनिया से ज्यादा वज़नदार है।

३. बदले के ख्याल को छोड़ कर जो भलाई की जाती है, वह समुद्र से भी अधिक बलवती है।

४. किसी से प्राप्त किया हुआ लाभ, राई की तरह छोटा ही क्यों न हो; किन्तु समझदार आदमी की दृष्टि में वह ताड़ के वृक्ष के बराबर है।

५. कृतज्ञता की सीमा, किये हुये उपकार पर अवलम्बित नहीं है; उसका मूल्य उपकृत व्यक्ति की शराफ़त पर निर्भर है।

६. महात्माओं की मित्रता की अवहेलना मत करो और उन लोगों का त्याग मत करो, जिन्होंने मुसीबत के वक्त तुम्हारी सहायता की।

७. जो किसी को कष्ट में उबारता है, उन्हें जन्मान्तर तक उसका नाम कृतज्ञता के साथ लिया जायेगा ।

८. उपकार को भूल जाना नीचता है; लेकिन यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको फौरन ही भुला देना शराफत की निशानी है ।*

९. हानि पहुँचाने वाले की यदि कोई मेहरबानी याद आ जाती है तो महा भयङ्कर व्यथा पहुँचाने वाली चोट, उसी दम भूल जाती है ।

१०. और सब दोषों से कलङ्कित मनुष्यों का तो उद्धार हो सकता है; किन्तु अभागे अकृतज्ञ मनुष्य का कभी उद्धार न होगा ।

---

* अपकारिषु यः साधुः, सः साधुः सद्भिरुच्यते ।

बारहवाँ परिच्छेद

ईमानदारी तथा न्याय-निष्ठा

१. और कुछ नहीं; नेकी का सार इसी में कि मनुष्य निष्पक्ष हो कर, ईमानदारी के साथ, दूसरे का हक़ अदा कर दे फिर चाहे वह दोस्त हो अथवा दुश्मन।

२. न्याय-निष्ठ की सम्पत्ति कभी कम नहीं होती। वह दूर तक, पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाती है।

३. नेकी को छोड़ कर जो धन मिलता है, उसे कभी मत छुओ; भले ही उससे लाभ के अतिरिक्त और किसी बात की सम्भावना न हो।

१४. नेक और बद का पता उनकी सन्तान से चलता है।

५. भलाई-बुराई तो सभी को पेश आती है, मगर एक न्यायनिष्ठ दिल बुद्धिमानों के गर्व की चीज़ है।*

---

* निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु। लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥ अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा। न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ भर्तृहरि नी. श्लो. ८४.

है; उसने अपने समस्त आगामी जन्मों के लिए ख़ज़ाना जमा कर रक्खा है।*

७. और किसी को चाहे तुम मत रोको मगर अपनी ज़ुबान को लगाम दो; क्योंकि बे लगाम की ज़ुबान बहुत दुःख देती है।

८. अगर तुम्हारे एक शब्द से भी किसी को पीड़ा पहुँचती है तो तुम अपनी सब नेकी नष्ट हुई समझो।

९. आग का जला हुआ तो समय पाकर अच्छा हो जाता है, मगर ज़ुबान का लगा हुआ ज़ख्म सदा हरा बना रहता है।

१०. उस मनुष्य को देखो जिसने विद्या और बुद्धि प्राप्त कर ली है। जिसका मन शान्त और पूर्णतः वश में है—धार्मिकता और नेकी उसका दर्शन करने के लिये उसके घर में आती है।

---

* तिरुवल्लुवर के भाव में और गीता के इस निम्नलिखित श्लोक में कितना सामञ्जस्य है! इन्द्रिय-निग्रह को दोनों कछुवे के अङ्ग समेटने से उपमा देते हैं और दोनों के बताये हुए फल भी लगभग एक से हैं:—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

गीता अ. २ श्लो. २८

चौदहवाँ परिच्छेद

सदाचार

१. जिस मनुष्य का आचरण पवित्र है, सभी उसकी इज्जत करते हैं, इसलिये सदाचार को प्राणों से भी बढ़ कर समझना चाहिये।*

२. अपने आचरण की खूब देख-रेख रक्खो; क्योंकि तुम जहाँ चाहो खोजो, सदाचार से बढ़ कर पक्का दोस्त कहीं नहीं पा सकते।

३. सदाचार सम्मानित परिवार को प्रगट करता है। मगर दुराचार मनुष्य को कमीनों में जा बिठाता है।

४. वेद भी अगर विस्मृत हो जायँ तो फिर याद कर लिये जा सकते हैं; मगर सदाचार से यदि एकबार भी मनुष्य स्खलित हो गया तो सदा के लिये अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है।

५. सुख-समृद्धि ईर्ष्या करने वालों के लिये नहीं है; ठीक इसी तरह गौरव दुराचारियों के लिये नहीं है।

---

* वरं विन्ध्याटव्यामनशनतृषार्तस्य मरणम्।
न शीलाद् विभ्रंशो भवतु कुलजस्य श्रुतवतः॥

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

पराई स्त्री की इच्छा न करना

१. जिन लोगों की नजर धन और धर्म पर रहती है, वे परायी स्त्री को चाहने की मूर्खता नहीं करते।

२. जो लोग धर्म से गिर गये हैं उनमें उस मनुष्य से बढ़कर मूर्ख और कोई नहीं है कि जो पड़ोसी की ड्योढ़ी पर खड़ा होता है।

३. निस्सन्देह वे लोग मौत के मुँह में हैं कि जो सन्देह न करने वाले मित्रके घर पर हमला करते हैं।

४. मनुष्य कितना ही बड़ा क्यों न हो; मगर उसका बड़प्पन किस काम का जब कि वह व्यभिचार से पैदा हुई लज्जा का जरा भी खयाल न करके पर-स्त्री गमन करता है।*

---

* पर नारी पैनी छुरी, मत कोई लावो अङ्ग।
रावण के दश सिर गये, पर नारी के सङ्ग॥
—कबीर

सोलहवाँ परिच्छेद

क्षमा

१. धरती* उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं—इसी तरह तुम भी उन लोगों की बातें सहन करो जो तुम्हें सताते हैं; क्योंकि बड़प्पन इसी में है।

२. दूसरे लोग तुम्हें जो हानि पहुँचायें उसके लिये तुम सदा उन्हें क्षमा कर दो; और अगर तुम उसे भुला दे सको तो यह और भी अच्छा है।

३. अतिथि-सत्कार से इनकार करना ही सब से अधिक ग़रीबी की बात है और मूर्खों की बेहूदगी को सहन करना ही सब से बड़ी बहादुरी है।

४. यदि तुम सदा ही गौरवमय बनना चाहते हो तो सब के प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

५. जो लोग बुराई का बदला लेते हैं, बुद्धिमान उन को इज़्ज़त नहीं करते; मगर जो अपने

---

* एक हिन्दी कवि ने सन्तों की उपमा फलदार वृक्षों से देते हुए कहा है—

'ये इनतें पाहन हने, ये उनके फल देत'

दुश्मनों को क्षमा कर देते हैं वह सोने की तरह बहुमूल्य समझे जाते हैं।

६. बदला लेने की खुशी तो सिर्फ एक ही दिन रहती है मगर जो पुरुष क्षमा कर देता है उ गौरव सदा स्थिर रहता है।

७. नुकसान चाहे कितना ही बड़ा क्यों उठाना पड़ा हो; मगर खूबी इसी में है। मनुष्य उसे मन में न लावे और बदला ले के विचार से दूर रहे।

८. घमण्ड में चूर हो कर जिन्होंने तुम्हें हानि पहुँचाई है, उन्हें अपनी भलमनसाहत से विजय कर लो।

९. *संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु वाणी को सहन कर लेता है।

१०. भूखे रह कर तपश्चर्या करने वाले निःसन्देह महान हैं, मगर उनका दर्जा उन लोगों के बाद ही है जो अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं।

---

* कबीर तो यहाँ तक कह गये हैं—
निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबन बिना, निर्मल करे सुभाव॥

सत्रहवाँ परिच्छेद

ईर्ष्या न करना

१. ईर्ष्या के विचारों को अपने मन में न आने दो; क्योंकि ईर्ष्या से रहित होना धर्माचरण का एक अङ्ग है।

२. सब प्रकार की ईर्ष्या से रहित स्वभाव के समान दूसरी और कोई बड़ी नियामत नहीं है।

३. जो मनुष्य धन या धर्म की परवाह नहीं करता वही अपने पड़ोसी की समृद्धि पर डाह करता है।

४. बुद्धिमान लोग ईर्ष्या की वजह से दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते क्योंकि उससे जो बुराइयाँ पैदा होती हैं, उन्हें वे जानते हैं।

५. ईर्ष्या करने वाले के लिये ईर्ष्या ही काफ़ी बला है; क्योंकि उसके दुश्मन उसे छोड़ भी दें तो भी उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देगी।

६. जो मनुष्य दूसरों को देते हुए नहीं देख सकता उसका कुटुम्ब, रोटी और कपड़ों तक के लिये मारा २ फिरेगा और नष्ट हो जायेगा।

७. लक्ष्मी ईर्ष्या करने वाले के पास नहीं रह सकती, वह उसको अपनी बड़ी बहिन * के हवाले कर के चली जायगी।

८. दुष्टा ईर्ष्या दरिद्रता दानवी को बुलाती है और मनुष्य को नरक के द्वार तक ले जाती है।

९. ईर्ष्या करने वालों की समृद्धि और उदार चेता पुरुषों की कङ्गाली ये दोनों ही एक समान आश्चर्यजनक हैं।

१०. न तो ईर्ष्या से कभी कोई फल फूला और न उदारचेता पुरुष उस अवस्था से कभी वञ्चित ही हुआ।

---

* दरिद्रता।

अठारहवाँ परिच्छेद

निर्लोभता

१. जो पुरुष सन्मार्ग को छोड़ कर दूसरे की सम्पत्ति को लेना चाहता है उसकी दुष्टता बढ़ती जायगी और उसका परिवार क्षीण हो जायगा।

२. जो पुरुष बुराई से विमुख रहते हैं वे लोभ नहीं करते और न दुष्कर्मों की ओर ही प्रवृत्त होते हैं।

३. देखो; जो मनुष्य अन्य प्रकार के सुखों को चाहते हैं, वे छोटे-मोटे सुखों का लोभ नहीं करते और न कोई बुरा काम ही करते हैं।

४. जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है और जिनके विचार उदार हैं, वे यह कह कर दूसरों को चीज़ों की कामना नहीं करते—ओहो, हमें इसकी जरूरत है।

५. वह बुद्धिमान और समझदार मन किस काम का जो लालच में फँस जाता है और वाहियात काम करने को तय्यार होता है।

६. वे लोग भी जो सुयश के भूखे हैं और सीधी राह पर चलते हैं, नष्ट हो जायँगे, यदि धन के फेर में पड़ कर कोई कुचक्र रचेंगे।

७. लालच द्वारा एकत्रित किये हुए धन की कामना मत करो क्योंकि भोगने के समय उस का फल तीखा होगा।

८. यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी सम्पत्ति कम न हो तो तुम अपने पड़ोसी के धन-वैभव को मसने की कामना मत करो।

९. जो बुद्धिमान मनुष्य न्याय की बात को समझता है और दूसरे की चीजों को लेना नहीं चाहता; लक्ष्मी उसकी श्रेष्ठता को जानती है और उसे ढूंढती हुई उसके घर तक जाती है।

१०. दूरदर्शिता-हीन लालच नाश का कारण होता है; मगर महत्व, जो कहता है—मैं नहीं चाहता, सर्व-विजयी होता है।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

चुग़ली न खाना

१. जो मनुष्य सदा बुराई ही करता है और नेकी का कभी नाम भी नहीं लेता, उसको भी प्रसन्नता होती है जब कोई कहता है—देखो! यह आदमी किसी की चुग़ली नहीं खाता।

२. नेकी से विमुख हो जाना और बदी करना निःसन्देह बुरा है मगर सामने हँस कर बोलना और पीठ पीछे निन्दा करना उस से भी बुरा है।

३. झूठ और निन्दा के द्वारा जीवन व्यतीत करने से तो फ़ौरन ही मर जाना बेहतर है क्योंकि इस तरह मर जाने में नेकी का फल मिलता है।

४ पीठ पीछे किसी की निन्दा न करो, चाहे उसने तुम्हारे मुँह पर ही तुम्हें गाली दी हो।

५. मुंह से कोई कितनी ही नेकी की बातें करे मगर उसकी चुग़लख़ोर ज़ुबान उसके हृदय की नीचता को प्रगट कर ही देती है।

६. अगर तुम दूसरे की निन्दा करोगे तो वह तुम्हारे दोषों को खोज कर उनमें से बुरे से बुरे दोषों को प्रगट कर देगा।

७. जो मधुर वचन बोलना और मित्रता करना नहीं जानते वे फूट का बीज बोते हैं और मित्रों को एक दूसरे से जुदा कर देते हैं।

८. जो लोग अपने मित्रों के दोषों की खुले आम चर्चा करते हैं वे अपने दुश्मनों के दोषों को भला किस तरह छोड़ेंगे ?

९. पृथ्वी निन्दा करने वाले के पदाघात को, सब्र के साथ, अपनी छाती पर किस तरह सहन करती है ? क्या वही अपना पिएड छुड़ाने की ग़रज़ से धर्म की ओर बार-बार ताकती है ?

१०. यदि मनुष्य अपने दोषों की विवेचना उसी तरह करे जिस तरह वह अपने दुश्मनों के दोषों की करता है, तो क्या बुराई कभी उसे छू सकती है ?

बीसवाँ परिच्छेद

पाप कर्मों से भय

१. दुष्ट लोग उस मूर्खता से नहीं डरते जिसे पाप कहते हैं, मगर लायक लोग उससे सदा दूर भागते हैं।

२. बुराई से बुराई पैदा होती है, इसलिये आग से भी बढ़कर बुराई से डरना चाहिये।

३. कहते हैं, सब से बड़ी बुद्धिमानी यही है कि दुश्मन को भी नुक्सान पहुँचाने से परहेज किया जाय।

४. भूल से भी दूसरे के सर्वनाश का विचार न करो क्योंकि न्याय उसके विनाश की युक्ति सोचता है जो दूसरे के साथ बुराई करना चाहता है।

५. मैं ग़रीब हूँ; ऐसा कह कर किसी को पाप-कर्म में लिप्त न होना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वह और भी कङ्गाल हो जायेगा।

६. जो मनुष्य आपत्तियों द्वारा दुःखित होना नहीं चाहता, उसे दूसरों को हानि पहुँचाने से बचना चाहिये।

दूसरे सब तरह के दुश्मनों से बचा जा सकता है मगर पाप कर्मों का कभी विनाश नहीं होता—वे पापी का पीछा करके उसको नष्ट किये बिना नहीं छोड़ते।

८. जिस तरह छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती, बल्कि जहाँ २ वह जाता है उसके पीछे २ चली रहती है, बस, ठीक इसी तरह पाप कर्म पापी का पीछा करते हैं और अन्त में उसका सर्वनाश कर डालते हैं।

९. यदि किसी को अपने से प्रेम है तो उसे पाप की ओर ज़रा भी न झुकना चाहिये।

१०. उसे आपत्तियों से सदा सुरक्षित समझो जो, अनुचित कर्म करने के लिये सन्मार्ग को नहीं छोड़ता।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

परोपकार

१. महान् पुरुष जो उपकार करते हैं, उसका बदला नहीं चाहते। भला, संसार जल बरसाने वाले बादलों का बदला किस तरह चुका सकता है ?

२. योग्य पुरुष अपने हाथों मेहनत करके जो धन जमा करते हैं, वह सब दूसरों ही के लिये होता है।

३. हार्दिक उपकार से बढ़कर न तो कोई चीज़ इस संसार में मिल सकती है और न स्वर्ग में।

४. जिसे उचित-अनुचित का विचार है, वही वास्तव में जीवित है पर, जो योग्य-अयोग्य का खयाल नहीं रखता उसकी गिनती मुर्दों में की जायगी।

५. लबालब भरे हुए गाँव के तालाब को देखो: जो मनुष्य सृष्टि से प्रेम करता है उसकी सम्पत्ति उसी तालाब के समान है।

६. दिलदार आदमी का वैभव गाँव के बीचों बीच उगे हुए और फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है।

बाईसवाँ परिच्छेद

दान

१. गरीबों को देना ही दान है; और सब तरह का देना उधार देने के समान है।

२. दान लेना बुरा है चाहे उस से स्वर्ग ही क्यों न मिलता हो। और दान देने वाले के लिये चाहे स्वर्ग का द्वार ही क्यों न बन्द हो जाये, फिर भी दान देना धर्म है।

३. हमारे पास नहीं है—ऐसा कहे बिना दान देने वाला पुरुष ही केवल कुलीन होता है।

४. याचक के ओठों पर सन्तोष-जनित हँसी की रेखा देखे बिना दानी का दिल खुश नहीं होता।

५. आत्म-जयी की विजयों में से सर्वश्रेष्ठ जय है भूख को जय करना। मगर उसकी विजय से भी बढ़ कर उस मनुष्य की विजय है जो भूख को शान्त करता है।

६. गरीबों के पेट की ज्वाला को शान्त करना यही तरीका है जिससे अमीरों को खास अपने लिये धन जमा कर रखना चाहिये।

७. जो मनुष्य अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँट कर खाता है उसको भूख की भयानक बिमारी कभी स्पर्श नहीं करती।

८. ये संग-दिल लोग जो जमा कर-कर के अपने धन की बरबादी करते हैं, क्या उन्होंने कभी दूसरों को दान करने की खुशी का मज़ा नहीं चक्खा है ?

९. भीख माँगने से भी बढ़ कर अप्रिय कंजूस का जमा किया हुआ खाना है जो अकेले बैठ कर खाता है।

१०. मौत से बढ़ कर कड़वी चीज़ और कोई नहीं है; मगर मौत भी उस वक्त मीठी लगती है जब किसी को दान करने की सामर्थ्य नहीं रहती।

तेईसवाँ परिच्छेद

कीर्ति

१. गरीबों को दान दो और कीर्ति कमाओ; मनुष्य के लिये इस से बढ़ कर लाभ और किसी में नहीं है।

२. प्रशंसा करने वाले की जबान पर सदा उन लोगों का नाम रहता है कि जो गरीबों को दान देते हैं।

३. दुनियाँ में और सब चीजें तो नष्ट हो जाती हैं; मगर अतुल कीर्ति सदा बनी रहती है।

४. देखो; जिस मनुष्य ने दिगन्तव्यापी स्थायी कीर्ति पायी है, स्वर्ग में देवता लोग उसे साधु-सन्तों से भी बढ़ कर मानते हैं

५. विनाश जिससे कीर्ति में वृद्धि हो और मौत जिस से अलौकिक यश की प्राप्ति हो, ये दोनों महान् आत्माओं ही के मार्ग में आते हैं।

६. यदि मनुष्यों को संसार में अवश्य ही पैदा होना है तो उनको चाहिये कि वे सुयश उपार्जन करें। जो ऐसा नहीं करते उनके लिये तो

द्वितीय खण्ड

तपस्वी का जीवन

चौबीसवाँ परिच्छेद

दया

१. दया से लबालब भरा हुआ दिल ही सब से बड़ी दौलत है क्योंकि दुनियावी दौलत तो नीच मनुष्यों के पास भी देखी जाती है।

२. ठीक पद्धति से सोच-विचार कर हृदय में दया धारण करो और अगर तुम सब धर्मों से इस बारे में पूछ कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि दया ही एक मात्र मुक्ति का साधन है।

३. जिन लोगों का हृदय दया से अभिभूत है वे उस अन्धकारमय अप्रिय लोक में प्रवेश नहीं करते।

४. जो मनुष्य सब जीवों पर मेहरबानी और दया दिखलाता है, उसे उन पाप-परिणामों को भोगना नहीं पड़ता जिन्हें देख कर ही आत्मा काँप उठती है।

५. क्लेश दयालु पुरुष के लिये नहीं है; भरी-पूरी वायु-वेष्टित पृथ्वी इस बात की साक्षी है।

६. अफ़सोस है उस आदमी पर जिसने दया-धर्म को त्याग दिया और पाप कर्म करने लगा है; धर्म का त्याग करने के कारण यद्यपि पिछले जन्मों में उसने भयङ्कर दुःख उठाये हैं मगर उसने जो नसीहत ली थी, उसे भुला दिया है।

७. जिस तरह इहलोक धन-वैभव से शून्य पुरुष के लिये नहीं है; ठीक इसी तरह परलोक उन लोगों के लिये नहीं, जिन के पास दया का अभाव है।

८. ऐहिक वैभव से शून्य ग़रीब लोग तो किसी दिन वृद्धिशाली हो भी सकते हैं, मगर वे, जो दया-ममता से रहित हैं, सचमुच ही ग़रीब-कङ्गाल हैं और उनके दिन कभी नहीं फिरते।

९. विकार-ग्रस्त मनुष्य के लिये सत्य को पा लेना जितना सहज है, कठोर दिलवाले पुरुष के लिये नेकी के काम करना भी उतना ही आसान है।

१०. जब तुम किसी दुर्बल को सताने के लिये उद्यत हो तो सोचो कि अपने से बलवान मनुष्य के आगे भय से जब तुम काँपोगे तब तुम्हें कैसा लगेगा।

पचीसवाँ परिच्छेद

निरामिष

१. भला उसके दिल में तरस कैसे आयेगा जो अपना मांस बढ़ाने की खातिर दूसरों का मांस खाता है।

२. फिजूल खर्च करने वाले के पास जैसे धन नहीं ठहरता; ठीक इसी तरह मांस खाने वाले के हृदय में दया नहीं रहती।

३. जो मनुष्य माँस चखता है उसका दिल हथियार-बन्द आदमी के दिल की तरह नेकी की ओर राग़िब नहीं होता।

४. जीवों की हत्या करना निःसन्देह क्रूरता है मगर उनका मांस खाना तो एकदम पाप है।*

५. माँस न खाने ही में जीवन है; अगर तुम खाओगे तो नरक का द्वार तुम्हें बाहर निकल जाने देने के लिये अपना मुँह नहीं खोलेगा।

---

* अहिंसा ही दया है और हिंसा करना ही निर्दयता मगर माँस खाना एकदम पाप है।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

तप

१. शान्तिपूर्वक दुःख सहन करना और जीव-हिंसा न करना; बस इन्हीं में तपस्या का समस्त सार है।

२. तपस्या तेजस्वी लोगों के लिये ही है। दूसरे लोगों का तप करना बेकार है।

३. तपस्वियों को खिलाने-पिलाने और उनको सेवा-सुश्रूषा करने के लिये कुछ लोग होने चाहियें—क्या इसी विचार से बाकी लोग तप करना भूल गये हैं?

४. यदि तुम अपने शत्रुओं का नाश करना और उन लोगों को उन्नत बनाना चाहते हो जो तुम्हें प्यार करते हैं तो जान रक्खो कि यह शक्ति तप में है।

५. तप समस्त कामनाओं को यथेष्ट रूप से पूर्ण कर देता है। इसीलिये लोग दुनिया में तपस्या के लिये उद्योग करते हैं।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

मक्कारी

१. स्वयं उसके ही शरीर के पंचतत्व मन ही मन उस पर हँसते हैं जब कि वे मक्कार की चालबाजी और ऐयारी को देखते हैं।

२. शानदार रोबवाला चेहरा किस काम का, जब कि दिल के अन्दर बुराई भरी है और दिल इस बात को जानता है।

३. वह कापुरुष जो तपस्वी का सी तेजस्वी आकृति बनाये रखता है, उस गधे के समान है जो शेर की खाल पहने हुए घास चरता है।

४. उस मनुष्य को देखो जो धर्मात्मा के भेष में छुपा रहता है और दुष्कर्म करता है। वह उस बहेलिये के समान है जो झाड़ी के पीछे छुप कर चिड़ियों को पकड़ता है।

५. मक्कार आदमी दिखाने के लिये पवित्र बनता है और कहता है—मैंने अपनी इच्छाओं, इन्द्रिय-लालसाओं को जीत लिया है, मगर अन्त में वह दुःख भोगेगा और रो रो कर कहेगा-मैंने क्या किया? हाय! मैंने क्या किया?

अट्ठाईसवां परिच्छेद

सच्चाई

१. सच्चाई क्या है ? जिससे दूसरों को, किसी तरह का, ज़रा भी नुक़सान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है।

२. उस झूठ में भी सच्चाई की ख़ासियत है जिसके फल स्वरूप सरासर नेकी ही होती हो।

३. जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह झूठ है, उसे कभी मत बोलो क्योंकि झूठ बोलने से ख़ुद तुम्हारी अन्तरात्मा ही तुम्हें जलायेगी।

४. देखो, जिस मनुष्य का हृदय झूठ से पाक है, वह सब के दिलों पर हुकूमत करता है।

५. जिसका मन सत्य में निमग्न है वह पुरुष तपस्वी से भी महान और दानी से भी श्रेष्ठ है।

६. मनुष्य के लिये इससे बढ़ कर सुयश और कोई नहीं है कि लोगों में उसकी प्रसिद्धि हो कि वह झूठ बोलना जानता ही नहीं। ऐसा पुरुष अपने शरीर को कष्ट दिये बिना ही सब तरह की नियामतों को पा जाता है।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

क्रोध न करना

१. जिस में चोट पहुँचाने की शक्ति है उसीमें सहनशीलता का होना समझा जा सकता है। जिस में शक्ति ही नहीं है वह क्षमा करे या न करे उससे किसी का क्या बनता बिगड़ता है?

२. अगर तुम में हानि पहुँचाने की शक्ति न भी हो तब भी गुस्सा करना बुरा है। मगर जब तुम में शक्ति हो तब तो गुस्से से बढ़ कर खराब बात और कोई नहीं है।

३. तुम्हें नुकसान पहुँचाने वाला कोई भी हो, गुस्से को दूर कर दो क्योंकि गुस्से से सैकड़ों बुराइयें पैदा होती हैं।*

४. क्रोध हँसी की हत्या करता है और खुशी को नष्ट कर देता है। क्या क्रोध से बढ़कर मनुष्य का और भी कोई भयानक शत्रु है?

---

* गीता में क्रोध-जनित परिणामों का इस प्रकार वर्णन है—

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

५. अगर तुम अपना भला चाहते हो तो गुस्से से दूर रहो; क्योंकि यदि तुम उससे दूर न रहोगे तो वह तुम्हें आ दबोचेगा और तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा।

६. अग्नि उसीको जलाती है जो उसके पास जाता है मगर क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला डालती है।

७. जो गुस्से को इस तरह दिल में रखता है मानो वह कोई बहुमूल्य पदार्थ हो, वह उस मनुष्य के समान है जो जोर से जमीन पर अपना हाथ दे मारता है; इस आदमी के हाथ में चोट लगे बिना नहीं रह सकती और पहले आदमी का सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

८. तुम्हें जो नुक्सान पहुँचा है वह।तुम्हें भड़कते हुए अङ्गारों की तरह जलाता भी हो तब भी बेहतर है कि तुम क्रोध से दूर रहो।

९. मनुष्य की समस्त कामनाएँ तुरन्त ही पूर्ण हो जाया करें यदि वह अपने मन से क्रोध को दूर कर दे।

१०. जो गुस्से के मारे आपे से बाहर है वह मुर्दे के समान है, मगर जिसने क्रोध को त्याग दिया है वह सन्तों के समान है।

तीसवां परिच्छेद

अहिंसा

१. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ है। हिंसा के पीछे हर तरह का पाप लगा रहता है।*

२. हाजतमन्द के साथ अपनी रोटी बाँट कर खाना और हिंसा से दूर रहना यह सब पैग़म्बर में के समस्त उपदेशों में श्रेष्ठतम उपदेश है।

३. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है। सचाई का दर्जा उसके बाद है।

---

* पीछे कह चुके हैं:—सत्य से बढ़ कर और कोई चीज़ नहीं है (परि० २८ पद १०) पर यहाँ सत्य का दूसरा दर्जा बताया है। मनुष्य तल्लीन होकर जब किसी बात का ध्यान करता है तब वही बात उसे सब से अधिक प्रिय मालूम पड़ती है। इससे कभी २ इस प्रकार का विरोध आभास हो जाता है। यह मानव स्वभाव का एक चमत्कार है।

लालाजी ने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है—

Ahinsa is the highest religion but there is no religion higher than truth. Ahinsa and truth must be reconciled, in fact in essence they are one and the same.

लाला लाजपत राय, सभापति हिन्दू महासभा

द्वितीय खण्ड

ज्ञान

इक्तीसवाँ परिच्छेद

सांसारिक चीज़ों की निस्सारता

१. उस मोह से बढ़कर मूर्खता की और कोई बात नहीं है कि जिसके कारण अस्थायी पदार्थों को मनुष्य स्थिर और नित्य समझ बैठता है।

२. धनोपार्जन करना तमाशा देखने के लिये आयी हुई भीड़ के समान है और धन का क्षय उस भीड़ के तितर-बितर हो जाने के समान है—अर्थात् धन क्षणस्थायी है।

३. समृद्धि क्षणस्थायी है। यदि तुम समृद्धि-शाली हो गये हो तो ऐसे काम करने में देर न करो जिनसे स्थायी लाभ पहुँच सकता है।

४. समय, देखने में भोलाभाला और बे गुनाह मालूम होता है, मगर वास्तव में वह एक आरा है जो मनुष्य के जीवन को बराबर काट रहा है।

५. नेक काम करने में जल्दी करो, ऐसा न हो कि ज़ुबान बन्द हो जाय और हिचकियें आने लगें।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

त्याग

१. मनुष्य ने जो चीज छोड़ दी है उस से पैदा होने वाले दुःख से उसने अपने को मुक्त * कर लिया है।

२. त्याग से अनेकों प्रकार के सुख उत्पन्न होते हैं, इसलिये अगर तुम उन्हें अधिक समय तक भोगना चाहो तो शीघ्र त्याग करो।

३. अपनी पाँचों इन्द्रियों का दमन करो और जिन चीजों से तुम्हें सुख मिलता है उन्हें बिलकुल ही त्याग दो।

---

* वांच्छित वस्तु को प्राप्त करने की चिन्ता, खोजाने की आशंका और न मिलने से निराशा तथा भोगाधिक्य से जो दुःख होते हैं, उनसे वह बचा हुआ है।

इन्द्रिय-दमन तथा तप और संयम का यही सच्चा मार्ग है। यह एक तरह की कसरत है जिससे मन को साधा जा सकता है। बी अम्मा की चौलाई वाली कहानी इसका एक सुन्दर उदाहरण है। उन्हें चौलाई का शाक बहुत पसन्द था। एक रोज़ बड़े प्रेम से उन्होंने शाक बनाया किन्तु तैयार हो जाने पर उन्होंने खाने से इन्कार कर दिया, जब कारण पूछा गया तो कहा—आज मेरा मन इस चौलाई की भाजी में बहुत लग गया है। मैं सोचती हूँ, यदि मैं अपने को वासना के वशीभूत हो जाने दूँगी और कल कहीं दूसरे पति की इच्छा हुई तब मैं क्या करूँगी।

भोग भोगकर शान्ति लाभ करनेकी बात कोरी विडम्बना मात्र है। एक तो 'हविषा कृष्ण वर्मेव भूयएवाभिवर्द्धते' इस कथनानुसार तृष्णा बढ़ती ही जाती है। दूसरे, थके हुए घोड़े को निकालने से लाभ ही क्या? जब इन्द्रियों में बल है और शरीरमें स्फूर्ति है तभी उन्हें संयमसे कसकर सन्मार्ग

तेतीसवाँ परिच्छेद

सत्य का आस्वादन

१. मिथ्या और अनित्य पदार्थों को सत्य समझने के भ्रम से ही मनुष्य को दुःखमय जीवन भोगना पड़ता है।

२. देखो, जो मनुष्य भ्रमात्मक भावों से मुक्त है और जिसकी दृष्टि स्वच्छ है, उसके लिये दुःख और अन्धकार का अन्त हो जाता है और आनन्द उसे प्राप्त होता है।

३. जिसने अनिश्चित बातों से अपने को मुक्त कर लिया है और जिसने सत्य को पा लिया है, उसके लिये स्वर्ग पृथ्वी से भी अधिक समीप है।

४. मनुष्य जैसी उच्च योनि को प्राप्त कर लेने से भी कोई लाभ नहीं, अगर आत्मा ने सत्य का आस्वादन नहीं किया।

५. कोई भी बात हो, उसमें सत्य को झूँठ से पृथक् कर देना ही मेधा का कर्त्तव्य है।

६. वह पुरुष धन्य है जिसने गम्भीरतापूर्वक स्वाध्याय किया है और सत्य को पा लिया है;
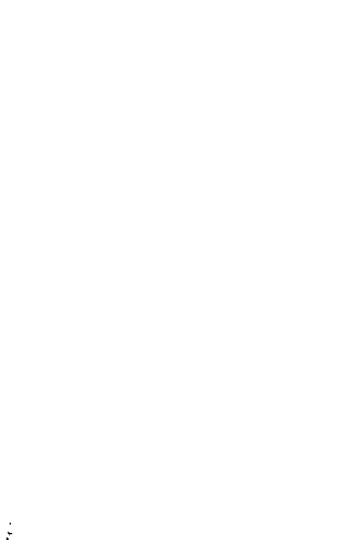
चौंतीसवाँ परिच्छेद

कामना का दमन

१. कामना एक बीज है जो प्रत्येक आत्मा को सर्वदा ही अनवरत-कभी न चूकने वाले-जन्मों की फ़सल प्रदान करता है।

२. यदि तुम्हें किसी बात की कामना करना ही है तो जन्मों के चक्र से छुटकारा पाने की कामना करो और वह छुटकारा तभी मिलेगा जब तुम कामना को जीतने की इच्छा करोगे।

३. निष्कामना से बढ़ कर यहाँ-मर्त्यलोक में-दूसरी और कोई सम्पत्ति नहीं है और तुम स्वर्ग में भी जाओ तुम्हें ऐसा खज़ाना न मिल सकेगा जो उसका मुकाबिला करे।

४. कामना से मुक्त होने के सिवाय पवित्रता और कुछ नहीं है। और यह मुक्तिपूर्ण सत्य की इच्छा करने से ही मिलती है।

५. वही लोग मुक्त हैं जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है; बाकी लोग देखने में स्वतन्त्र मालूम पड़ते हैं मगर वास्तव में वे बन्धन से जकड़े हुए हैं।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

भवितव्यता—होनी

१. मनुष्य दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है जब भाग्य-लक्ष्मी उस पर प्रसन्न होकर कृपा करना चाहती है। मगर मनुष्य में शिथिलता आ जाती है, जब भाग्य-लक्ष्मी उसे छोड़ने को होती है।

२. दुर्भाग्य शक्तियों को मन्द कर देता है, मगर जब भाग्य-लक्ष्मी कृपा दिखाना चाहती है तो वह पहले बुद्धि को विस्तृत कर देती है।

३. ज्ञान और सब तरह की चतुरता से क्या लाभ? अन्दर जो आत्मा है उसका ही प्रभाव सर्वोपरि है।

४. दुनिया में दो चीजें हैं जो एक दूसरे से बिल्कुल नहीं मिलतीं। धन-सम्पत्ति एक चीज है और साधुता तथा पवित्रता बिल्कुल दूसरी चीज *।

५. जब किसी के दिन बुरे होते हैं तो भलाई भी बुराई में बदल जाती है, मगर जब दिन फिरते हैं तो बुरी चीजें भी भली हो जाती हैं।

---

*सुई के नकुए में से ऊँट का निकल जाना तो सरल है पर धनिक पुरुष का स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है।

—क्राइस्ट

द्वितीय भाग

अर्थ

प्रथम खण्ड

राजा

छत्तीसवाँ परिच्छेद

राजा के गुण

१. जिसके पास सेना, आबादी, धन, मन्त्री, सहायक मित्र और दुर्ग ये छः चीजें यथेष्ट रूप से हैं; वह राजाओं में शेर है।

२. राजा में साहस, उदारता, बुद्धिमानी और कार्य-शक्ति—इन बातों का कभी अभाव नहीं होना चाहिये।

३. जो पुरुष दुनिया में हुकूमत करने के लिये पैदा हुए हैं उन्हें चौकसी, जानकारी और निश्चय-बुद्धि—ये तीनों खूबियें कभी नहीं छोड़तीं।

४. राजा को धर्म करने में कभी न चूकना चाहिये और अधर्म को दूर करना चाहिये। उसे ईर्ष्या पूर्वक अपनी इज्जत की रक्षा करनी चाहिये, मगर वीरता के नियमों के विरुद्ध दुराचरण कभी न करना चाहिये।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

शिक्षा

१. प्राप्त करने योग्य जो ज्ञान है, उसे सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करना चाहिये और उसे प्राप्त करने के पश्चात् उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिये।

२. मानव जाति की जीती जागती दो आँखें हैं। एक को अङ्क कहते हैं और दूसरी को अक्षर।

३. शिक्षित लोग ही आँख वाले कहलाये जा सकते हैं, अशिक्षितों के सिर में तो केवल दो गड्ढे होते हैं।

४. विद्वान जहाँ कहीं भी जाता है अपने साथ आनन्द ले जाता है, लेकिन जब वह विदा होता है तो पीछे दुःख छोड़ जाता है।

५. यद्यपि तुम्हें गुरु या शिक्षक के सामने उतना ही अपमानित और नीचा बनना पड़े जितना कि एक भिक्षुक को धनवान् के समक्ष बनना पड़ता है, फिर भी तुम विद्या सीखो; मनुष्यों में अधम वही लोग हैं जो विद्या सीखने से इनकार करते हैं।

६. रेत का कुआ जितना ही खोदोगे उतना ही अधिक पानी निकलेगा, ठीक इसी तरह तुम जितना ही अधिक सीखोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या में वृद्धि होगी।

७. विद्वान के लिये सभी जगह उसका घर है और सभी जगह उसका स्वदेश है। फिर लोग मरने के दिन तक विद्या-प्राप्त करते रहने से लापरवाही क्यों करते हैं?

८. मनुष्य ने एक जन्म में जो विद्या प्राप्त की है वह उसे समस्त आगामी जन्मों में भी उन्नत और सम्पन्न बना देगी।

९. विद्वान देखता है कि जो विद्या उसे आनन्द देती है, वह संसार को भी आनन्दप्रद होती है और इसीलिये वह विद्या को और भी अधिक चाहता है।

१०. विद्या मनुष्य के लिये एक दोष त्रुटिहीन और अविनाशी निधि है। उसके सामने दूसरी तरह की दौलत कुछ भी नहीं है।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

बुद्धिमानों के उपदेश को सुनना

१. सब से अधिक बहुमूल्य खज़ानों में कानों का खज़ाना है। निःसन्देह वह सब प्रकार की सम्पत्ति से श्रेष्ठ है।

२. जब कानों को देने के लिये भोजन न रहेगा तो पेट के लिये भी कुछ भोजन दे दिया जायगा।*

३. देखो, जिन लोगों ने बहुत से उपदेशों को सुना है, वे पृथ्वी पर देवता स्वरूप हैं।

४. यद्यपि किसी मनुष्य में शिक्षा न हो फिर भी उसे उपदेश सुनने दो, क्योंकि जब उसके ऊपर मुसीबत पड़ेगी तब उनसे ही उसे कुछ सान्त्वना मिलेगी।

५. धर्मात्मा लोगों की नसीहत एक मज़बूत लाठी की तरह है, क्योंकि जो उसके अनुसार काम करते हैं, उन्हें वह गिरने से बचाती है।

---

*अर्थात् जब तक सुनने के लिये उपदेश हों तब तक भोजन का ख़याल ही न करना चाहिये।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

बुद्धि

१. बुद्धि समस्त अचानक आक्रमणों को रोकने वाला कवच है। वह ऐसा दुर्ग है जिसे दुश्मन भी घेर कर नहीं जीत सकते।

२. यह बुद्धि ही है जो इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने से रोकती है, उन्हें बुराई से दूर रखती है और नेकी की ओर प्रेरित करती है।

३. समझदार बुद्धि का काम है कि हर एक बात में झूठ को सत्य से निकाल कर अलहदा कर दे; फिर उस बात का कहने वाला कोई भी क्यों न हो।

४. बुद्धिमान मनुष्य जो कुछ कहता है, इस तरह से कहता है कि उसे सब कोई समझ सकें; और दूसरों के मुँह से निकले हुए शब्दों के आन्तरिक भाव को वह समझ लेता है।

५. बुद्धिमान पुरुष सारी दुनिया के साथ मिलनसारी से पेश आता है और उसका मिजाज हमेशा एक सा रहता है। उनकी मित्रता न तो पहिले बेहद बढ़ जाती है, और न एकदम घट जाती है।

चालीसवां परिच्छेद

दोषों को दूर करना

१. जो मनुष्य दर्प, क्रोध और विषय-लालसाओं से रहित है, उसमें एक प्रकार का गौरव रहता है जो उसके सौभाग्य को भूषित करता है।

२. कञ्जूसी, अहङ्कार और बेहद ऐयाशी, ये राजा में विशेष दोष होते हैं।*

३. देखो, जिन लोगों को अपनी कीर्ति प्यारी है वे अपने दोष को राई के समान छोटा होने पर भी ताड़ के वृक्ष के बराबर समझते हैं।

४. अपने को बुराइयों से बचाने में सदा सचेत रहो, क्योंकि वे ऐसी दुश्मन हैं जो तुम्हारा सर्वनाश कर डालेंगी।

---

* यदि राजा में ये दोष होते हैं तो उसके लिये वह विशेष रूप से भयङ्कर सिद्ध होते हैं और उसके पतन का कारण बन जाते हैं। पिछले दो दोष तो मानो सम्पत्ति की स्वाभाविक सन्तान हैं। बाहर शत्रुओं की तरह इन अधिक प्रबल आन्तरिक शत्रुओं से बुद्धिमान और उन्नतिशील राजा को सदा सावधान रहना चाहिये।

एकतालीसवाँ परिच्छेद

योग्य पुरुषों की मित्रता

१. जो लोग धर्म करते २ बुड्ढे हो गये हैं, उनकी तुम इज्जत करो, उनकी दोस्ती हासिल करने की कोशिश करो ।

२. तुम जिन मुश्किलों में फँसे हुए हो, उनको जो लोग दूर कर सकते हैं और आने वाली बुराइयों से जो तुम्हें बचा सकते हैं, उत्साह पूर्वक उनकी मित्रता को प्राप्त करने की चेष्टा करो ।

३. अगर किसी को योग्य पुरुषों की प्रीति और भक्ति मिल जाय तो वह महान् से महान् सौभाग्य की बात है ।

४. जो लोग तुम से अधिक योग्यता वाले हैं, वे यदि तुम्हारे मित्र बन गये हैं तो तुमने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिसके सामने अन्य सब शक्तियाँ तुच्छ हैं ।

५. चूंकि मन्त्री ही राजा की आँखें हैं, इसलिये उनके चुनने में बहुत ही समझदारी और होशियारी से काम लेना चाहिये ।

बयालीसवाँ परिच्छेद

कुसङ्ग से दूर रहना

१. लायक लोग बुरी सोहबत से डरते हैं, मगर छोटी तबियत के आदमी बुरे लोगों से इस तरह मिलते-जुलते हैं, मानो वे उनके ही कुटुम्ब वाले हैं।

२. पानी का गुण बदल जाता है—वह जैसी जमीन पर बहता है वैसा ही गुण, उसका हो जाता है—इसी तरह जैसी सङ्गत होती है, उसी तरह का असर पड़ता है।

३. आदमी की बुद्धि का सम्बन्ध तो दिमाग से है, मगर उसकी नेकनामी का दारोमदार उन लोगों पर है जिनकी सोहबत में वह रहता है।

४. मालूम तो ऐसा होता है कि मनुष्य का स्वभाव उसके मन में रहता है, किन्तु वास्तव में उसका निवासस्थान उस गोष्ठी में है कि जिसकी सङ्गत वह करता है।

५. मन की पवित्रता और कर्म की पवित्रता आदमी की सङ्गत की पवित्रता पर निर्भर है।

६. पाकदिल आदमी की औलाद नेक हे
और जिनकी सङ्गत अच्छी है, वे हर तरह
फलते-फूलते हैं।

७. मन की पवित्रता आदमी के लिये सदा
है और अच्छी सङ्गत उसे हर तरह का गौ
प्रदान करती है।

८. बुद्धिमान यद्यपि स्वयमेव सर्व-गुण-सम्प
होते हैं, फिर भी वे पवित्र पुरुषों के सुसंग व
शक्ति का स्तम्भ समझते हैं।

९. धर्म मनुष्य को स्वर्ग ले जाता है और सत्
रुषों की सङ्गति मनुष्यों को धर्माचरण में र
करती है।

१०. अच्छी सङ्गत से बढ़कर आदमी का सहा
यक और कोई नहीं है। और कोई भी चीज
इतनी हानि नहीं पहुँचाती जितनी कि बुरी
सङ्गत।

तेतालीसवाँ परिच्छेद

काम करने से पहिले सोच-विचार लेना

१. पहले यह देख लो कि इस काम में लागत कितनी लगेगी, कितना माल खराब जायगा और मुनाफ़ा इसमें कितना होगा; फिर तब उस काम में हाथ डालो।

२. देखो, जो राजा सुयोग्य पुरुषों से सलाह करने के बाद ही किसी काम को करने का फ़ैसला करता है; उसके लिये ऐसी कोई बात नहीं है जो असम्भव हो।

३. ऐसे भी उद्योग हैं जो मुनाफ़े का सब्जबाग़ दिखाकर अन्त में मूलधन-असल-तक को नष्ट कर देते हैं; बुद्धिमान लोग उनमें हाथ नहीं लगाते।

४. देखो, जो लोग नहीं चाहते कि दूसरे आदमी उन पर हँसें, वे पहिले अच्छी तरह से गौर किये बिना कोई काम शुरू नहीं करते।

५. सब बातों की अच्छी तरह पेशबन्दी किये बिना ही लड़ाई छेड़ देने का अर्थ यह है कि तुम दुश्मन को खूब होशियारी के साथ तय्यार की हुई ज़मीन पर लाकर खड़ा कर देते हो।

चौआलीसवां परिच्छेद

शक्ति का विचार

१. जिस काम को तुम उठाना चाहते हो, उसमें जो मुश्किलें हैं, उन्हें अच्छी तरह देख भाल लो; उसके बाद अपनी शक्ति, अपने विरोधी की शक्ति तथा अपने तथा विरोधी के सहायकों की शक्ति का विचार कर लो और तब तुम उस काम को शुरू करो।

२. जो अपनी शक्ति को जानता है और जो कुछ उसे सीखना चाहिये, वह सीख चुका है और जो अपनी शक्ति और ज्ञान की सीमा के बाहर क़दम नहीं रखता, उसके आक्रमण कभी व्यर्थ नहीं जायँगे।

३. ऐसे बहुत से राजा हुए जिन्होंने जोश में आ कर अपनी शक्ति को अधिक समझा और काम शुरू कर बैठे; पर बीच में ही उनका काम तमाम हो गया।

४. जो आदमी शान्तिपूर्वक रहना नहीं जानते, जो अपने बलाबल का ज्ञान नहीं रखते और जो घमण्ड में चूर रहते हैं, उनका शीघ्र ही अन्त होता है।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

अवसर का विचार

१. दिन में, कौआ उल्लू पर विजय पाता है; जो राजा अपने दुश्मन को हराना चाहता है उसके लिये अवसर एक बड़ी चीज़ है।

२. हमेशा वक्त को देखकर काम करना; यह एक ऐसी डोरी है जो सौभाग्य को मज़बूती के साथ तुमसे आवद्ध कर देगी।

३. अगर ठीक मौक़े और साधनों का खयाल रख कर काम शुरू करो और समुचित साधनों को उपयोग में लाओ तो ऐसी कौनसी बात है कि जो असम्भव हो ?

४. अगर तुम मुनासिब मौक़े और उचित साधनों को चुनो तो तुम सारी दुनिया को जीत सकते हो।

५. जिनके हृदय में विजय-कामना है, वे चुपचाप मौक़ा देखते रहते हैं; वे न तो गड़बड़ाते हैं और न जल्दबाजी करते हैं।

६. चकनाचूर कर देने वाली चोट लगने के पहिले, मेंढ़ा एक कदम पीछे हट जाता है; मनुष्य की निष्कर्मण्यता भी ठीक इसी तरह होती है।

७. बुद्धिमान लोग कभी बात अपने गुस्से को प्रगट नहीं कर देते; वे उसको दिल ही दिल में रखते हैं, और अवसर की ताक में रहते हैं।

८. अपने दुश्मन के सामने झुक जाओ, जब तक उसकी अवनति का दिन नहीं आता। जब वह दिन आयेगा तो तुम आसानी के साथ, उसे सिर के बल नीचे फेंक दे सकोगे।

९. जब तुम्हें असाधारण अवसर मिले तो तुम हिचकिचाओ मत, बल्कि एकदम काम में जुट जाओ, फिर चाहे वह असम्भव ही क्यों न हो।*

१०. जब समय तुम्हारे विरुद्ध हो तो सारस की तरह निष्कर्मण्यता का बहाना करो; लेकिन जब वक्त आवे तो सारस की तरह, तेजी के साथ, झपट कर हमला करो।

---

* अगर तुम्हें असाधारण अवसर मिल जावे तो फौरन् दुस्साध्य काम को कर डालो।

छियालीसवाँ परिच्छेद

स्थान का विचार

१. कार्यक्षेत्र की अच्छी तरह जाँच किये बिना लड़ाई न छेड़ो और न कोई काम शुरू करो। दुश्मन को छोटा मत समझो।

२. दुर्गवेष्ठित स्थान पर खड़ा होना शक्तिशाली और बलवान के लिये भी अत्यन्त लाभदायक है।

३. यदि समुचित स्थान को चुन लें और होशियारी के साथ युद्ध करें तो दुर्बल भी अपनी रक्षा कर के शक्तिशाली शत्रु को जीत सकते हैं।

४. अगर तुम सुदृढ़ स्थान पर जम कर खड़े हो और वहाँ डटे रहो तो तुम्हारे दुश्मनों की सब युक्तियाँ निष्फल सिद्ध होंगी।

५. मगर, पानी के अन्दर सर्व शक्तिशाली है; किन्तु बाहर निकलने पर वह दुश्मनों के हाथ का खिलौना है।

६. मजबूत पहियों वाला रथ समुद्र के ऊपर नहीं दौड़ता है और न सागरगामी जहाज सूखी जमीन पर तैरता है।

७. देखो, जो राजा सब कुछ पहिले ही से तय कर लेता है और समुचित स्थान का प्रबन्ध करता है उसको अपने बल के अतिरिक्त दूसरे साधनों की आवश्यकता नहीं है।

८. जिसका बल निर्बल है वह राजा यदि रणक्षेत्र के समुचित भाग में जाकर खड़ा हो तो उसके शत्रुओं की सारी चेष्टायें व्यर्थ सिद्ध होंगी।

९. अगर रक्षा का सामान और अन्य साधन न भी हों तो भी किसी जाति को उसके देश में हराना मुश्किल है।

१०. देखो, उस मस्त हाथी ने, पलक मारते ही भाले-बरदारों की सारी फौज का मुकाबिला किया। लेकिन जब वह दलदली मैदान में फँस जायगा तो एक गीदड़ भी उसके ऊपर फतह पा लेगा।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

परीक्षा करके विश्वस्त मनुष्यों को चुनना

१. धर्म, अर्थ, काम और प्राणों का भय—ये चार कसौटियाँ हैं जिन पर कस कर मनुष्य को चुनना चाहिये।

२. जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ है, जो दोषों से रहित है और जो बेइज्जती से डरता है, वही मनुष्य तुम्हारे लिये है।

३. जब तुम परीक्षा करोगे तो देखोगे कि अत्यन्त ज्ञानवान और शुद्ध मन वाले लोग भी हर तरह की अज्ञानता से सर्वथा रहित न निकलेंगे।

४. मनुष्य की भलाइयों को देखो और फिर उसकी बुराइयों पर नजर डालो; इन में जो अधिक हैं, बस समझलो वैसा ही उसका स्वभाव है।

५. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि अमुक मनुष्य उदार-चित्त है या क्षुद्र-हृदय ? याद रक्खो कि आचार-व्यवहार चरित्र की कसौटी है।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

मनुष्यों की परीक्षा; उनकी नियुक्ति और निगरानी

१. देखो, जो आदमी नेकी को देखता है और बदी को भी देखता है, मगर पसन्द उसी बात को करता है कि जो नेक है; बस उसी आदमी को अपनी नौकरी में लो।

२. जो मनुष्य तुम्हारे राज्य के साधनों को विस्फूर्त कर सके और उस पर जो आपत्ति पड़े, उसे दूर कर सके, ऐसे ही आदमी के हाथ में अपने राज्य का प्रबन्ध सौंपो।

३. उसी आदमी को अपनी नौकरी के लिये चुनो कि जिसमें दया, बुद्धि और द्रुत निश्चय है, अथवा जो लालच से आजाद है।

४. बहुत से आदमी ऐसे हैं जो सब तरह की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाते हैं, मगर फिर भी ठीक कर्त्तव्य पालन के वक्त बदल जाते हैं।

५. आदमियों के सुचतुर-ज्ञान और उनकी शान्त कार्य-कारिणी शक्ति का खयाल करके ही उनके हाथों में काम सौंपना चाहिये; इसलिये नहीं कि वे तुम से प्रेम करते हैं।

उनचासवाँ परिच्छेद

न्याय-शासन

१. खूब गौर करो और किसी तरफ़ मत झुको, निष्पक्ष होकर कानूनदाँ लोगों की राय लो— न्याय करने का यही तरीक़ा है।

२. संसार जीवन-दान के लिये बादलों की ओर देखता है; ठीक इसी तरह न्याय के लिये लोग राज-दण्ड की ओर निहारते हैं।

३. राज-दण्ड ही ब्रह्म-विद्या और धर्म का मुख्य संरक्षक है।

४. देखो, जो राजा अपने राज्य की प्रजा पर प्रेम-पूर्वक शासन करता है, उससे राज्यलक्ष्मी कभी पृथक् न होगी।

५. देखो, जो राजा नियमानुसार राज-दण्ड धारण करता है, उसका देश समयानुकूल वर्षा और शस्य-श्री का घर बन जाता है।

६. राजा की विजय का कारण उसका भाला नहीं होता है; बल्कि यों कहिये कि वह राज-

पचासवां परिच्छेद

जुल्म-अत्याचार

१. देखो, जो राजा अपनी प्रजा को सताता और उन पर जुल्म करता है; वह हत्यारे से भी बदतर है।

२. जो राजदण्ड धारण करता है, उसकी प्रार्थना ही हाथ में तलवार लिये हुए डाकू के इन शब्दों के समान है—"खड़े रहो, और जो कुछ है रख दो।"

३. देखो, जो राजा प्रतिदिन राज्य-सञ्चालन की देख-रेख नहीं रखता और उसमें जो त्रुटियाँ हों, उन्हें दूर नहीं करता, उसका राजत्व दिन २ क्षीण होता जायगा।

४. शोक है उस विचारहीन राजा पर, जो न्याय-मार्ग से चल-विचल हो जाता है; वह अपना राज्य और धन सब कुछ खो बैठेगा।

५. निस्सन्देह ये अत्याचार-दलित दुःख से कराहते हुये लोगों के आँसू ही हैं जो राजा की समृद्धि को धीरे धीरे बहा ले जाते हैं।

पचासवां परिच्छेद

जुल्म-अत्याचार

१. देखो, जो राजा अपनी प्रजा को सताता और उन पर जुल्म करता है; वह हत्यारे से भी बदतर है।

२. जो राजदण्ड धारण करता है, उसकी प्रार्थना ही हाथ में तलवार लिये हुए डाकू के इन शब्दों के समान है—"खड़े रहो, और जो कुछ है रख दो।"

३. देखो, जो राजा प्रतिदिन राज्य-सञ्चालन की देख-रेख नहीं रखता और उसमें जो त्रुटियाँ हों, उन्हें दूर नहीं करता, उसका राजत्व दिन २ क्षीण होता जायगा।

४. शोक है उस विचारहीन राजा पर, जो न्याय-मार्ग से चल-विचल हो जाता है; वह अपना राज्य और धन सब कुछ खो बैठेगा।

५. निस्सन्देह ये अत्याचार-दलित दुःख से कराहते हुये लोगों के आँसू ही हैं जो राजा की समृद्धि को धीरे धीरे बहा ले जाते हैं।

६. न्याय-शासन द्वारा ही राजा को यश मिलता है और अन्याय-शासन उसकी कीर्ति को कलङ्कित करता है।

७. वर्षा-हीन आकाश के तले पृथ्वी की जो दशा होती है, ठीक वही दशा निर्दयी राजा के राज्य में प्रजा की होती है।

८. अत्याचारी राजा के शासन में ग़रीबों से ज्यादा दुर्गति अमीरों की होती है।

९. अगर राजा न्याय और धर्म के मार्ग से बहक जायेगा तो स्वर्ग से ठीक समय पर वर्षा की बौछारें आना बन्द हो जायँगी।

१०. यदि राजा न्याय-पूर्वक शासन नहीं करेगा तो गाय के थन सूख जायँगे और ब्राह्मण* अपनी विद्या को भूल जायँगे।

---

* षट्कर्मी शब्द का प्रयोग मूल ग्रन्थ में है।

एक्यावनवां परिच्छेद

गुप्तचर

१. राजा को यह ध्यान में रखना चाहिये कि राजनीति-विद्या और गुप्त-चर—ये दो आँखें हैं, जिनसे वह देखता है।

२. राजा का काम है कि कभी कभी प्रत्येक मनुष्य की, प्रत्येक बात की हर रोज खबर रक्खे।

३. जो राजा गुप्तचरों और दूतों के द्वारा अपने चारों तरफ होने वाली घटनाओं की खबर नहीं रखता है—उसके लिये दिग्विजय नहीं है।

४. राजा को चाहिये कि अपने राज्य के कर्मचारियों, अपने बन्धु-बान्धवों और शत्रुओं की गति-मति को देखने के लिये दूत नियत कर रक्खे।

५. जो आदमी अपने चेहरे का ऐसा भाव बना सके कि जिससे किसी को सन्देह न हो, जो किसी भी आदमी के सामने गड़बड़ाये नहीं और जो अपने गुप्त भेदों को किसी तरह प्रकट

न होने दे—भेदिया का काम करने के लिये वही ठीक आदमी है।

६. गुप्तचरों और दूतों को चाहिये कि वे संन्यासियों और साधु-सन्तों का भेष धारण करें और खोज कर सच्चा भेद निकालें और चाहे कुछ भी हो जाय, वे अपना भेद न बतायें।

७. जो मनुष्य दूसरों के पेट से भेद की बातें निकाल सकता है, और जिसकी गवेषणा सदा शुद्ध और निस्सन्दिग्ध होती है; वही भेद लगाने का काम करने लायक है।

८. एक दूत के द्वारा जो सूचना मिलती है, उसको दूसरे दूत की सूचना से मिला कर जाँचना चाहिए

९. इस बात का ध्यान रक्खो कि कोई दूत उसी काम में लगे हुए दूसरे दूतों को न जानने पाये और जब तीन दूतों की सूचनाएँ एक दूसरे से मिलती हों, तब उन्हें सच्चा मान सकते हो।

१०. अपने खुफिया पुलिस के अफसरों को खुले आम इनाम मत दो, क्योंकि यदि तुम ऐसा करोगे तो अपने ही राज का पर्दाफाश कर दोगे।

बावनवाँ परिच्छेद

क्रिया—शीलता

१. जिनमें काम करने की शक्ति है, बस, वही सच्चे अमीर हैं और जिनके अन्दर वह शक्ति नहीं है क्या वे सचमुच ही अपनी चीजों के मालिक हैं ?

२. काम करने की शक्ति ही मनुष्य का वास्तविक धन है क्योंकि दौलत हमेशा नहीं रहती, एक न एक दिन चली जायेगी।

३. धन्य है वह पुरुष जो काम करने से कभी पीछे नहीं हटता ! भाग्य-लक्ष्मी उसके घर की राह पूछती हुई जाती है।

४. पौधे को सींचने के लिये जो पानी डाला जाता है, उसीसे उसके फूल के सौन्दर्य का पता लग जाता है; ठीक इसी तरह आदमी का उत्साह, उसकी भाग्य-शीलता का पैमाना है।

५. जोशीले आदमी शिकस्त खाकर कभी पीछे नहीं हटते, हाथी के जिस्म में जब दूर तक तीर घुस जाता है, तब वह और भी मजबूती के साथ जमीन पर अपने पैरों को जमाता है।

न होने दे—भेदिया का काम करने के लिये वही ठीक आदमी है।

६. गुप्तचरों और दूतों को चाहिये कि वे संन्यासियों और साधु-सन्तों का भेष धारण करें और खोज कर सच्चा भेद निकालें और चाहे कुछ भी हो जाय, वे अपना भेद न बतावें।

७. जो मनुष्य दूसरों के पेट से भेद की बातें निकाल सकता है, और जिसकी गवेषणा सदा शुद्ध और निस्सन्दिग्ध होती है; वही भेद लगाने का काम करने लायक़ है।

८. एक दूत के द्वारा जो सूचना मिलती है, उसको दूसरे दूत की सूचना से मिला कर जाँचना चाहिए

९. इस बात का ध्यान रक्खो कि कोई दूत उसी काम में लगे हुए दूसरे दूतों को न जानने पाये और जब तीन दूतों की सूचनाएँ एक दूसरे से मिलती हों, तब उन्हें सच्चा मान सकते हो।

१०. अपने खुफ़िया पुलिस के अफ़सरों को खुले आम इनाम मत दो, क्योंकि यदि तुम ऐसा करोगे तो अपने ही राज को फ़ाश कर दोगे।

बावनवाँ परिच्छेद

क्रिया—शीलता

१. जिनमें काम करने की शक्ति है, बस, वही सच्चे अमीर हैं और जिनके अन्दर वह शक्ति नहीं है क्या वे सचमुच ही अपनी चीज़ों के मालिक हैं ?

२. काम करने की शक्ति ही मनुष्य का वास्तविक धन है क्योंकि दौलत हमेशा नहीं रहती, एक न एक दिन चली जायेगी।

३. धन्य है वह पुरुष जो काम करने में कभी पीछे नहीं हटता ! भाग्य-लक्ष्मी उसके घर की राह पूछती हुई जाती है।

४. पौधे को सींचने के लिये जो पानी डाला जाता है, उसीसे उसके फूल के सौन्दर्य का पता लग जाता है; ठीक इसी तरह आदमी का उत्साह, उसकी भाग्य-शीलता का पैमाना है।

५. जोशीले आदमी शिकस्त खाकर कभी पीछे नहीं हटते, हाथी के जिस्म में जब दूर तक तीर घुस जाता है, तब वह और भी मजबूती के साथ ज़मीन पर अपने पैरों को जमाता है।

द्वितीय खण्ड

राज-तन्त्र

चौपनवाँ परिच्छेद

मन्त्री

१. देखो, जो मनुष्य महत्वपूर्ण उद्योगों को सफलतापूर्वक सम्पादन करने के मार्गों और साधनों को जानता है और उनको आरम्भ करने के समुचित समय को पहिचानता है, सलाह देने के लिये के वही योग्य पुरुष है।

२. स्वाध्याय, दृढ़-निश्चय, पौरुष, कुलीनता और प्रजा की भलाई के निमित्त सप्रेम चेष्टा—ये मन्त्री के पाँच गुण हैं।

३. जिसमें दुश्मनों के अन्दर फूट डालने की शक्ति है, जो वर्तमान मित्रता के सम्बन्धों को बनाये रख सकता है और जो लोग दुश्मन बन गये हैं उनको फिर से मिलाने की सामर्थ्य जिसमें है—बस वही योग्य मंत्री है।

४. उचित उद्योगों को पसन्द करने और उनको कार्यरूप में परिणत करने के साधनों को चुनने की लियाक़त तथा सम्मति देते समय निश्चयात्मक स्पष्टता—ये परामर्शदाता के आवश्यक गुण हैं।

द्वितीय खण्ड

राज–तन्त्र

चौपनवाँ परिच्छेद

मन्त्री

१. देखो, जो मनुष्य महत्वपूर्ण उद्योगों को सफलतापूर्वक सम्पादन करने के मार्गों और साधनों को जानता है और उनको आरम्भ करने के समुचित समय को पहिचानता है, सलाह देने के लिये के वही योग्य पुरुष है।

२. स्वाध्याय, दृढ़-निश्चय, पौरुष, कुलीनता और प्रजा की भलाई के निमित्त सप्रेम चेष्टा— ये मन्त्री के पाँच गुण हैं।

३. जिसमें दुश्मनों के अन्दर फूट डालने की शक्ति है, जो वर्तमान मित्रता के सम्बन्धों को बनाये रख सकता है और जो लोग दुश्मन बन गये हैं उनको फिर से मिलाने की सामर्थ्य जिसमें है—बस वही योग्य मंत्री है।

४. उचित उद्योगों को पसन्द करने और उनको कार्यरूप में परिणत करने के साधनों को चुनने की लियाक़त तथा सम्मति देते समय निश्चयात्मक स्पष्टता—ये परामर्शदाता के आवश्यक गुण हैं।

५. देखो, जो नियमों को जानता है और जो ज्ञान में भरपूर है, जो समझ-बूझ कर बात करता है और जो मौके-महल को पहिचानता है—बस-वही मन्त्री तुम्हारे लायक है।

६. जो पुस्तकों के ज्ञान द्वारा अपनी स्वाभाविक बुद्धि की अभिवृद्धि कर लेते हैं, उनके लिये कौनसी बात इतनी मुश्किल है जो उनकी समझ में न आ सके।

७. पुस्तक-ज्ञान में यद्यपि तुम सुदक्ष हो फिर भी तुम्हें चाहिये कि तुम अनुभव-जन्य ज्ञान प्राप्त करो और उसके अनुसार व्यवहार करो।

८. सम्भव है कि राजा मूर्ख हो और पग २ पर उसके काम में अड़चनें डाले, मगर फिर भी मन्त्री का कर्त्तव्य है कि वह सदा वही राह उसे दिखावे कि जो फ़ायदेमन्द, ठीक और मुनासिब हो।

९. देखो, जो मन्त्री, मंत्रणा-गृह में बैठ कर, अपने राजा का सर्वनाश करने की युक्ति सोचता है, वह सात करोड़ दुश्मनों से भी अधिक भयङ्कर है।

१०. अनिश्चयी पुरुष सोच कर ठीक तरक़ीब निकाल भी लें, मगर उस पर अमल करते समय वे डगमगायेंगे और अपने मन्सूबों को कभी पूरा न कर सकेंगे।

६. ऐसी वक्तृता देना कि जो श्रोताओं के दिलों को तस्ख़ीर कर ले और दूसरों की वक्तृता के अर्थ को फ़ौरन् ही समझ जाना—यह पक्के राजनीतिज्ञ का कर्त्तव्य है।

७. देखो, जो आदमी सुवक्ता है और जो गड़बड़ाना या डरना नहीं जानता, विवाद में उसको हरा देना किसी के लिये सम्भव नहीं है।

८. जिसकी वक्तृता परिमार्जित और विश्वासोत्पादक भाषा से सुसज्जित होती है—सारा संसार उसके इशारे पर नाचेगा।

९. *जो लोग अपने मन की बात थोड़े से, चुने हुए, शब्दों में कहना नहीं जानते, वास्तव में उन्हीं को अधिक बोलने की लत होती है।*

१०. *देखो, जो लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझा कर दूसरों को नहीं बता सकते, वे उस फूल के समान हैं जो खिलता है मगर सुगन्ध नहीं देता।*

छप्पनवाँ परिच्छेद ।

शुभाचरण

१. मित्रता द्वारा मनुष्य को सफलता मिलती है; किन्तु आचरण की पवित्रता उसकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण कर देती है ।

२. उन कामों से सदा विमुख रहो कि जिनसे न तो सुकीर्ति मिलती है, न लाभ होता है ।

३. जो लोग संसार में रह कर उन्नति करना चाहते हैं उन्हें ऐसे कार्यों से सदा दूर रहना चाहिये जिनसे कीर्ति में बट्टा लगने की सम्भावना हो ।

४. भले आदमी जिन बातों को बुरा बतलाते हैं, मनुष्यों को चाहिये अपने को जन्म देने वाली माता को बचाने के लिये भी वे उन कामों को न करें ।

५. अधर्म द्वारा एकत्र की हुई सम्पत्ति की अपेक्षा तो सदाचारी पुरुष की दरिद्रता कहीं अच्छी है ।

६. जिन कामों में असफलता अवश्यम्भावी है, उन सब से दूर रहना और बाधा-विघ्नों से डर

कर अपने कर्त्तव्य से विचलित न होना—ये दो बुद्धिमानों के मुख्य पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त समझे जाते हैं।

७. मनुष्य जिस बात को चाहता है उसको वह प्राप्त कर सकता है और वह भी उसी तरह से जिस तरह कि वह चाहता है बशर्ते कि वह अपनी पूरी शक्ति और पूरे दिल से उसको चाहता हो।

८. सूरत देख कर किसी आदमी को हेय मत समझो क्योंकि दुनिया में ऐसे भी आदमी हैं जो एक बड़े भारी दौड़ते हुए रथ की धुरी की कीली के समान हैं।

९. लोगों को रुला कर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है, वह क्रन्दन-ध्वनि के साथ ही विदा हो जाती है; मगर जो धर्म द्वारा सञ्चित की जाती है, वह बीच में क्षीण हो जाने पर भी अन्त में खूब फलती-फूलती है।

१०. धोखा देकर दगाबाजी के साथ धन जमा करना बस ऐसा ही है जैसा कि मिट्टी के बने हुए कच्चे घड़े में पानी भर कर रखना।

सत्तावनवाँ परिच्छेद

कार्य-सञ्चालन

१. किसी निश्चय पर पहुँचना यही विचार का उद्देश्य है; और जब किसी बात का निश्चय हो गया तब उसको कार्य में परिणित करने में देर करना भूल है।

२, जिन बातों को आराम के साथ फ़ुर्सत से करना चाहिये उनको तो तुम ख़ूब सोच विचार कर करो; लेकिन जिन बातों पर फ़ौरन ही अमल करने की ज़रूरत है, उनको एक क्षण भर के लिये भी न उठा रक्खो।

३. यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो सीधे अपने लक्ष्य की ओर चलो; किन्तु यदि परिस्थति अनुकूल न हो तो उस मार्ग का अनुसरण करो जिसमें सबसे कम बाधा आने की सम्भावना हो।

४. अधूरा काम और अपराजित शत्रु ये दोनों बिना बुझी आग की चिनगारियों के समान हैं; वे मौका पा कर बढ़ जायेंगे और उस ला-पर्वाह आदमी को आ दबोचेंगे।

अठावनवाँ परिच्छेद

राज-दूत

१. एक मेहरबान दिल, आला खान्दान और राजाओं को खुश करने वाले तरीके—यह सब राजपूतों की खूबियाँ हैं ।

२. प्रेम-मय प्रकृति, सुतीक्ष्ण बुद्धि और वाक्पटुता—ये तीनों बातें राजदूत के लिये अनिवार्य हैं।

३. जो मनुष्य राजाओं के समक्ष अपने स्वामी को लाभ पहुँचाने वाले शब्दों को बोलने का भार अपने सिर लेता है, उसे विद्वानों में विद्वान्—सर्वश्रेष्ठ विद्वान होना चाहिये ।

४. जिसमें बुद्धि और ज्ञान है और जिसका चेहरा शान्दार और रोबीला है, उसी को राज-दूतत्व के काम पर जाना चाहिये ।

५. संक्षिप्त वक्तृता, वाणी की मधुरता और चतुरतापूर्वक हर तरह की अप्रिय भाषा का निराकरण करना; ये ही साधन हैं जिनके द्वारा राज-दूत अपने स्वामी को लाभ पहुँचायेगा ।

६. विद्वत्ता, प्रभावोत्पादक वक्तृता और निर्भीकता और किस मौके पर क्या करना चाहिये

५. प्रत्येक कार्य को करते समय पाँच बातों का स्वय ध्यान रक्खो, अर्थात—उपस्थित साधन, औज़ार, कार्य का स्वरूप, समुचित समय और कार्य करने के उपयुक्त स्थान ।

६. काम करने में कितना परिश्रम पड़ेगा, मार्ग में कितनी बाधाएँ आयेंगी और फिर कितने लाभ की आशा है इन बातों को पहले सोच कर तब किसी काम को हाथ में लो ।

७. किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने का यही मार्ग है कि जो मनुष्य उस काम में दक्ष है उससे उस काम का रहस्य मालूम कर लेना चाहिये ।

८. लोग एक हाथी के द्वारा दूसरे हाथी को फँसाते हैं; ठीक इसी तरह एक काम को दूसरे काम के सम्पादन करने का ज़रिया बना लेना चाहिये ।

९. मित्रों को पारितोषिक देने से भी अधिक शीघ्रता के साथ दुश्मनों को शान्त करना चाहिये ।

१०. दुर्बलों को सदा ख़तरे की हालत में नहीं रहना चाहिये, बल्कि जब मौका मिले तब उन्हें बलवान के साथ मित्रता कर लेनी चाहिये ।

अठावनवाँ परिच्छेद

राज-दूत

१. एक मेहरबान दिल, आला खान्दान और राजाओं को खुश करने वाले तरीक़े—यह सब राजपूतों की खूबियाँ हैं ।

२. प्रेम-मय प्रकृति, सुतीक्ष्ण बुद्धि और वाक्पटुता—ये तीनों बातें राजदूत के लिये अनिवार्य हैं।

३. जो मनुष्य राजाओं के समक्ष अपने स्वामी को लाभ पहुँचाने वाले शब्दों को बोलने का भार अपने सिर लेता है, उसे विद्वानों में विद्वान्—सर्वश्रेष्ठ विद्वान होना चाहिये ।

४. जिसमें बुद्धि और ज्ञान है और जिसका चेहरा शान्दार और रोबीला है, उसी को राजदूतत्व के काम पर जाना चाहिये ।

५. संक्षिप्त वक्तृता, वाणी की मधुरता और चतुरतापूर्वक हर तरह की अप्रिय भाषा का निराकरण करना; ये ही साधन हैं जिनके द्वारा राज-दूत अपने स्वामी को लाभ पहुँचायेगा ।

६. विद्वत्ता, प्रभावोत्पादक वक्तृता और निर्भीकता और किस मौके पर क्या करना चाहिये

९. देखो, जो दृढ़-चरित्र पुरुष अपने मुख से हीन और अयोग्य वचन कभी नहीं निकालता है, विदेशी दरबारों में राजाओं के पैग़ाम सुनाने के लिये वही योग्य पुरुष है।

१०. मौत का सामना होने पर भी सच्चा राजदूत अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होता बल्कि अपने मालिक का काम बनाने की पूरी कोशिश करेगा।

---

* पहिले सात पदों में ऐसे राजदूतों का वर्णन है, जिनको अपनी ज़िम्मेदारी पर काम करने का अधिकार है। आख़िरी तीन पदों में उन दूतों का वर्णन है जो राजाओं के पैग़ाम ले जाने वाले होते हैं।

उनसठवाँ परिच्छेद

राजाओं के समक्ष कैसा बर्ताव होना चाहिये

१. जो कोई राजाओं के साथ रहना चाहता है उसको चाहिये कि वह उस आदमी के समान व्यवहार करे जो आग के सामने बैठ कर तापता है; उसको न तो अति समीप जाना चाहिये न अति दूर।

२. राजा जिन चीज़ों को चाहता है उनकी लालसा न रखना—यही उसकी स्थायी कृपा प्राप्त करने और उसके द्वारा समृद्धिशाली बनने का मूल-मन्त्र है।

३. यदि तुम राजा की नाराज़ी में पड़ना नहीं चाहते तो तुमको चाहिये कि हर तरह के गम्भीर दोषों से सदा पाक साफ़ रहो, क्योंकि यदि एकबार सन्देह पैदा हो गया तो फिर उसे दूर करना असम्भव हो जाता है।

४. बड़े लोगों के सामने काना-फूंसी न करो और न किसी दूसरे के साथ हँसो या मुस्कुराओ जब कि वे नज़दीक हों।

५. छिप कर कोई बात सुनने की कोशिश न करो और जो बात तुम्हें नहीं बताई गई है उसका पता लगाने की चेष्टा भी न करो; जब तुम्हें बताया जाय तभी उस भेद को जानो।

६. राजा का मिजाज इस वक्त कैसा है, इस बात को समझ लो और क्या मौका है इस बात को भी देख लो, तब ऐसे शब्द बोलो जिनसे वह प्रसन्न हो।

७. राजा के सामने उन्हीं बातों का ज़िक्र करो जिनसे वह प्रसन्न हो; मगर जिन बातों से कुछ लाभ नहीं है—जो बातें बेकार हैं—राजा के पूछने पर भी उनका ज़िक्र न करो *।

८. चूंकि वह नवयुवक है और तुम्हारा सम्बन्धी अथवा रिश्तेदार है इसलिये तुम उसको तुच्छ मत समझो, बल्कि उसके अन्दर जो ज्योति † विराजमान है, उसके सामने भय मानकर रहो।

९. देखो, जिनकी दृष्टि निर्मल और निर्द्वन्द्व है, वे यह समझ कर कि हम राजा के कृपा-पात्र हैं कभी कोई ऐसा काम नहीं करते जिससे राजा असन्तुष्ट हो।

१०. जो मनुष्य राजा की घनिष्ठता और मित्रता पर भरोसा रख कर अयोग्य काम कर बैठते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

---

* परिमेल अहहर कहता है कि उन्हीं बातों का ज़िक्र करो जो लाभदायक हों और जिनसे राजा प्रसन्न हो।

† मूल ग्रन्थ में जिसका प्रयोग है, उसका यह भी अर्थ हो सकता है—वह दिव्य ज्योति जो राजा के सो जाने पर भी प्रजा की रक्षा करती है।

साठवां परिच्छेद

मुखाकृति से मनोभाव समझना

१. देखो, जो आदमी जुबान से कहने से पहले ही दिल की बात जान लेता है वह सारे संसार के लिये भूषण स्वरूप है।

२. दिल में जो बात है, उसको यक़ीनी तौर पर मालूम कर लेने वाले मनुष्य को देवता समझो।

३. जो लोग किसी आदमी की सूरत देख कर ही उसकी बात भाँप जाते हैं, चाहे जिस तरह हो उनको तुम जरूर अपना सलाहकार बनाओ।

४. जो लोग विना कहे ही मन की बात समझ लेते हैं, उनकी सूरत शक्ल भी वैसी ही हो सकती है जैसी कि न समझ सकने वाले लोगों की होती है; मगर उन लोगों का दर्जा ही अलहदा है।

५. ज्ञानेन्द्रियों के मध्य आँख का क्या स्थान हो सकता है अगर वह एक ही नजर में दिल में जो बात है उसको जान नहीं सकती ?

६. जिस तरह बिल्लौरी पत्थर अपना रङ्ग बदल कर पासवाली चीज़ का रङ्ग धारण करता है, ठीक इसी तरह चेहरे का भाव भी बदल जाता है और दिल में जो बात होती है उसी को प्रकट करने लगता है।

७. चेहरे से बढ़ कर भावपूर्ण चीज़ और कौन सी है ? क्योंकि दिल चाहे नाराज़ हो या ख़ुश सब से पहले चेहरा ही इस बात को प्रकट करता है।

८. यदि तुम्हें ऐसा आदमी मिल जाय जो बिना कहे ही दिल की बात समझ सकता हो, तो, बस, इतना काफ़ी है कि तुम उसकी तरफ़ एक नज़र देख भर लो; तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।

९. यदि ऐसे लोग हों जो उसके हाव भाव और तौरो-तरीक़ को समझ सकें तो अकेली आँख ही यह बात बतला सकती है कि हृदय में घृणा है अथवा प्रेम।

१०. जो लोग अपने को होशियार और कामिल कहते हैं, उनका पैमाना और कुछ नहीं, केवल उनकी आँखें ही हैं।

इकसठवाँ परिच्छेद

श्रोताओं के समक्ष

१. ऐ शब्दों का मूल्य जानने वाले पवित्र पुरुषो ! पहिले अपने श्रोताओं की मानसिक स्थिति को समझ लो और फिर उपस्थित जन-समूह की अवस्था के अनुसार अपनी वक्तृता देना आरम्भ करो ।

२. बुद्धिमान और विद्वान लोगों की सभा में ही ज्ञान और विद्वत्ता की चर्चा करो; मगर मूर्खों को उनकी मूर्खता का ख़याल रख कर ही जवाब दो ।

३. धन्य है, वह आत्म-संयम जो मनुष्य को बुजुर्गों की सभा में आगे बढ़-कर नेतृत्व ग्रहण करने से मना करता है ! यह एक ऐसा गुण है जो अन्य गुणों से भी अधिक समुज्वल है ।

४. बुद्धिमान लोगों के सामने असमर्थ और असफल सिद्ध होना धर्म-मार्ग से पतित होजाने के समान है ।

५. विद्वान पुरुष की विद्वत्ता अपने पूर्ण तेज के साथ सुसम्पन्न गुणियों की सभा में ही चमकती है ।

६. बुद्धिमान लोगों के सामने उपदेश पूर्ण व्याख्यान देना जीवित पौदों को पानी देने के समान है।

७. ऐ अपनी वक्तृता से विद्वानों को प्रसन्न करने की इच्छा रखने वाले लोगों! देखो, कभी भूल कर भी मूर्खों के सामने व्याख्यान न देना*

८. रणक्षेत्र में खड़े हो कर बहादुरी के साथ मौत का सामना करने वाले लोग तो बहुत हैं, मगर ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं जो बिना काँपे हुए जनता के सामने, रङ्गमञ्च पर खड़े हो सकें।

९. तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसको विद्वानों के सामने खोल कर रक्खो और जो बात तुम्हें मालूम नहीं है, वह उन लोगों से सीख लो जो उसमें दक्ष हों।

१०. देखो, जो लोग विद्वानों की सभा में अपनी बात को लोगों के दिल में नहीं बिठा सकते वे हर तरह का ज्ञान रखने पर भी बिल्कुल निकम्मे हैं।

---

* क्योंकि अयोग्यों को उपदेश देना कीचड़ में अमृत फेंकने के समान है।

बासठवाँ परिच्छेद

देश

१. वह महान् देश है जो फसल की पैदावार में कभी नहीं चूकता और जो ऋषि-मुनियों तथा धार्मिक धनियों का निवास स्थान हो।

२. वही महान् देश है जो धन की अधिकता से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है और जिसमें खूब पैदावार होती है फिर भी हर तरह की बलाई—बीमारी से पाक रहता है।

३. उस महान् जाति की ओर देखो; उस पर कितने ही बोझ के ऊपर बोझ पड़ें, वह उन्हें दिलेरी के साथ बर्दाश्त करेगी और साथ ही साथ अपने सारे कर अदा कर देगी।

४. वही देश महान् है जो अकाल और महामारी से आज़ाद है और जो शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षित है।

५. वही महान् जाति है जो परस्पर युद्ध करने वाले दलों में विभक्त नहीं है, जो हत्यारे क्रान्तिकारियों से पाक है और जिसके अन्दर जाति का सर्वनाश करने वाला कोई देश-द्रोही नहीं है।

६. देखो, जो मुल्क दुश्मनों के हाथ
तबाह और बर्बाद नहीं हुआ; और अगर
हो भी जाये, तब भी जिसकी पैदावार
में कमी न आये—वह देश तमाम दुनि
मुल्कों में हीरा समझा जायेगा।

७. पृथ्वी तल के ऊपर रहने वाला जल, ज
के अन्दर रहने वाला जल, वर्षा-जल, उप
स्थानापन्न पर्वत और सुदृढ़ दुर्ग—ये चीजें प्र
देश के लिये अनिवार्य हैं।

८. धन-सम्पत्ति, जमीन की जरखेजी, खुश
हाली, बीमारियों से आजादी और दुश्मनों
हमलों से हिफ़ाजत—ये पाँच बातें राज्य के लिये
आभूषण स्वरूप हैं।

९. वही अकेला देश कहलाने योग्य है जहाँ
मनुष्यों के परिश्रम किये बिना ही खूब पैदा-
वार होती है; जिसमें आदमियों के परिश्रम
करने पर ही पैदावार हो, वह इस पद का अधि-
कारी नहीं है।

१०. अगर किसी देश में यह सब नियामतें मौजूद
भी हों फिर भी वह किसी मतलब का नहीं,
अगर उस देश का राजा ठीक न हो।

तिरसठवाँ परिच्छेद

दुर्ग

१. दुर्बलों के लिये, जिन्हें केवल अपने बचाव की ही चिन्ता होती है, दुर्ग बहुत ही उपयोगी होते हैं; मगर बलवान और शक्तिशाली के लिये भी वे कम उपयोगी नहीं होते।

२. जल-प्राकार, रेगिस्तान, पर्वत और सघन-वन—ये सब नाना प्रकार के रक्षणात्मक प्रतिबन्ध हैं।

३. ऊँचाई, मोटाई, मजबूती और अजेयत्व-ये चार गुण हैं, जो निर्माण-कला की दृष्टि से क़िलों के लिये जरूरी हैं।

४. वह गढ़ सब से उत्तम है जिसमें कमज़ोरी तो बहुत थोड़ी जगहों पर हो, मगर उसके साथ ही वह खूब विस्तृत हो; और जो लोग उसे लेना चाहें, उनके आक्रमणों को रोक दुश्मनों के बल को तोड़ने की शक्ति रखता हो।

५. अजेयत्व, दुर्ग-सैन्य के लिए रक्षणात्मक सुविधा और दुर्ग के अन्दर रसद और सामान की बहुतायत-यह सब दुर्ग के लिये आवश्यक बातें हैं।

६. वही सच्चा क़िला है, जिसमें हर तरह का सामान पर्याप्त परिमाण में मौजूद है। औ जो ऐसे लोगों की संरक्षकता में हो कि जो क़िं को बचाने के लिए वीरता पूर्वक लड़ें।

७. बेशक वह सच्चा क़िला है कि जिसे न तं कोई घेरा डाल कर जीत सके, और न अचान हमला करके, और न कोई जिसे सुरङ्ग लगा कर ही तोड़ सके।

८. निःसन्देह वह वास्तविक दुर्ग है जो क़िले की सेना को, घेरा डालने वाले शत्रुओं को हराने के योग्य बना देता है। यद्यपि वह उसको लेने की चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करें।

९. निःसन्देह वह दुर्ग है जो नाना प्रकार के साधनों द्वारा अजेय बन गया है और जो अपने संरक्षकों को इस योग्य बनता है कि वे दुश्मनों को क़िले की सुदूर सीमा पर ही मार कर गिरा सकें।

१०. मगर क़िला चाहे कितना ही मजबूत क्यों न हो, वह किसी काम का नहीं, अगर संरक्षक लोग वक़्त पर फ़ुर्ती से काम न लें।

चौसठवाँ परिच्छेद

धनोपार्जन

१. अप्रसिद्ध और बेकद्रोक़ीमत लोगों को प्रतिष्ठित बनाने में जितना धन समर्थ है, उतना और कोई पदार्थ नहीं।

२. ग़रीबों का सभी अपमान करते हैं, मगर धन-धान्य-पूर्ण मनुष्य की सभी जगह अभ्यर्थना होती है।

३. वह अविश्रान्त ज्योति जिसे लोग धन कहते हैं; अपने स्वामी के लिये सभी अन्धकार मय * स्थानों को ज्योत्स्नापूर्ण बना देती है।

४. देखो, जो धन-पाप-रहित निष्कलङ्क रूप से प्राप्त किया जाता है, उससे धर्म और आनन्द का स्रोत वह निकलता है।

५. जो धन, दया और ममता से रहित है, उसको तुम कभी इच्छा मत करो और उसको कभी अपने हाथ से छुओ भी मत।

---

* अन्धकार के लिए जो शब्द मूल में है, उसके अर्थ बुराई और दुश्मनी के भी हो सकते हैं।

पैंसठवाँ परिच्छेद

सेना के लक्षण

१. एक सुसङ्गठित और बलवती सेना जो खतरे से भयभीत नहीं होती है, राजा के वशवर्ती पदार्थों में सर्व-श्रेष्ठ है।

२. बेहिसाब आक्रमणों के होते हुए, भयङ्कर निराशा-जनक स्थिति को रक्षा, मँजे हुए बहादुर सिपाही ही अपने अटल निश्चय के द्वारा कर सकते हैं।

३. यदि वे समुद्र की तरह गरजते भी हैं तो इससे क्या हुआ ? काले नाग की एक ही फुफकार में चूहों का सारा झुण्ड का झुण्ड विलीन हो जायगा।

४. जो सेना हारना जानती ही नहीं और जो कभी भ्रष्ट नहीं की जा सकती और जिसने बहुत से अवसरों पर बहादुरी दिखाई है—वास्तव में वही सेना नाम की अधिकारिणी है।

५. वास्तव में सेना का नाम उसी को शोभा देता है कि जो बहादुरी के साथ यमराज का भी मुकाबिला कर सके जब कि वह अपनी पूर्ण प्रचण्डता के साथ सामने आवे।

६. बहादुरी, प्रतिष्ठा, एक साफ़ दिमाग़ और पिछले ज़माने की लड़ाइयों का इतिहास—ये चार बातें सेना की रक्षा करने के लिये कवच स्वरूप हैं।

७. जो सच्ची सेना है वह सदा दुश्मन की तलाश में रहती है क्योंकि उसको पूर्ण विश्वास है कि जब कोई दुश्मन लड़ाई करेगा तो वह उसे अवश्य जीत लेगी।

८. सेना में जब मुस्तैदी और एकाएक प्रचण्ड आक्रमण करने की शक्ति नहीं होती तब शानो शौक़त और जाहोजलाल उस कमज़ोरी को केवल पूरा भर कर देते हैं।

९. जो सेना संख्या में कम नहीं है और जिस को तनख्वाह न पाने के कारण भूखों नहीं मरना पड़ता, वह सेना विजयी होगी।

१०. सिपाहियों की कमी न होने पर भी कोई फौज नहीं बन सकती जब तक कि उसका सञ्चालन करने के लिये सरदार न हों।

छाछटवाँ परिच्छेद

वीर योद्धा का आत्म-गौरव

१. अरे ऐ दुश्मनो ! मेरे मालिक के सामने, युद्ध में, खड़े न होओ क्योंकि बहुत से आदमियों ने उसे युद्ध के लिये ललकारा था मगर आज वे सब पत्थर* की कब्रों के नीचे पड़े हुए हैं।

२. हाथी के ऊपर चलाया गया भाला अगर चूक भी जाये तब भी उसमें अधिक गौरव † है बनिस्बत उस तीर के जो खरगोश पर चलाया जाये और उसके लग भी जाये।

३. वह प्रचण्ड साहस जो प्रबल आक्रमण करता है, उसी को लोग वीरता कहते हैं, लेकिन उसकी शान उस दिलेराना फैयाज़ी में है कि जो अधःपतित शत्रु के प्रति दिखायी जाती है।

४. सिपाही ने अपना भाला हाथी के ऊपर चला दिया और वह दूसरे भाले की तलाश में जा रहा था, इतने ही में उसने एक भाला

---

* तामिल देश में बहादुरों की चिताओं और कब्रों के ऊपर कीर्ति स्तंभ के रूप में एक पत्थर गाड़ दिया जाता था।

† Higher aims are in themselves more valuable even if unfulfilled than lower ones quite attained—Goethe.

सड़सठवाँ परिच्छेद

मित्रता

१. दुनिया में ऐसी कौन सी वस्तु है जिसका हासिल करना इतना मुश्किल है जितना कि दोस्ती का ? और दुश्मनों से रक्षा करने के लिये मित्रता के समान और कौन सा कवच है ?

२. योग्य पुरुषों की मित्रता बढ़ती हुई चन्द्र-कला के समान है, मगर बेवक़ूफ़ों की दोस्ती घटते हुए चाँद के समान है।

३. योग्य पुरुषों की मित्रता दिव्य ग्रन्थों के स्वाध्याय के समान है; जितनी ही उनके साथ तुम्हारी घनिष्ठता होती जायगी उतनी ही अधिक खूबियाँ तुम्हें उनके अन्दर दिखायी पड़ने लगेंगी।

४. मित्रता का उद्देश्य हँसी-दिल्लगी करना नहीं है; बल्कि जब कोई बहक कर कुमार्ग में जाने लगे तो उसको रोकना और उसकी भर्त्स-ना करना ही मित्रता का लक्ष्य है।

५. बार बार मिलना और सदा साथ रहना इतना जरूरी नहीं है, यह तो हृदयों की एकता ही है कि जो मित्रता के सम्बन्ध को स्थिर और सुदृढ़ बनाती है।

६. हँसी-दिल्लगी करने वाली गोष्ठी का ना
मित्रता नहीं है; मित्रता तो वास्तव में वह प्रे
है जो हृदय को आह्लादित करता है।

७. जो मनुष्य तुम्हें बुराई से बचाता है, ने
राह पर चलाता है और जो मुसीबत के वक
तुम्हारा साथ देता है, बस वही मित्र है।

८. देखो, उस आदमी का हाथ कि जिसके कपड़े
हवा से उड़ गये हैं, कितनी तेजी के साथ फि
से अपने बदन को ढंकने के लिये दौड़ता है!
वही सच्चे मित्र का आदर्श है जो मुसीबत में पड़े
हुए आदमी की सहायता के लिये दौड़ कर
जाता है।

९. मित्रता का दरबार कहाँ पर लगता है?
बस वहीं पर कि जहाँ दो दिलों के बीच में अनन्य
प्रेम और पूर्ण एकता है और जहाँ दोनों मिल
कर हर एक तरह से एक दूसरे को उच्च और
उन्नत बनाने की चेष्टा करें।

१०. जिस दोस्ती का हिसाब लगाया जा सकता
है उसमें एक तरह का कँगलापन होता है। वह
चाहे कितने ही गर्वपूर्वक कहे—मैं उसको इतना
प्यार करता हूँ और वह मुझे इतना चाहता है।

अड़सठवाँ परिच्छेद

मित्रता के लिये योग्यता की परीक्षा

१. इससे बढ़ कर बुरी बात और कोई नहीं है कि बिना परीक्षा किये किसी के साथ दोस्ती कर ली जाय क्योंकि एक बार मित्रता हो जाने पर सहृदय पुरुष फिर उसे छोड़ नहीं सकता।

२. देखो, जो पुरुष पहिले आदमियों की जाँच किये बिना ही उनको मित्र बना लेता है वह अपने सर पर ऐसी आपत्तियों को बुलाता है कि जो सिर्फ उसकी मौत के साथ ही समाप्त होंगी।

३. जिस मनुष्य को तुम अपना दोस्त बनाना चाहते हो उसके कुल का, उसके गुण-दोषों का, कौन २ लोग उसके साथी हैं और किन किन के साथ उसका सम्बन्ध है इन सब बातों का अच्छी तरह से विचार करलो और उसके बाद यदि वह योग्य हो तो उसे दोस्त बना लो।

४. देखो, जिस पुरुष का जन्म उच्च कुल में हुआ है और जो बेइज्जती से डरता है उसके साथ आवश्यकता पड़े तो मूल्य देकर भी दोस्ती करनी चाहिये।

५. ऐसे लोगों को खोजो और उनके साथ दोस्ती करो कि जो सन्मार्ग को जानते हैं और तुम्हारे बहक जाने पर तुम्हें झिड़क कर तुम्हारी भर्त्सना कर सकते हैं।

६. आपत्ति में भी एक गुण है—वह एक पैमाना है जिससे तुम अपने मित्रों को नाप सकते हो।

७. निःसन्देह मनुष्य का लाभ इसी में है कि वह मूर्खों से मित्रता न करे।

८. ऐसे विचारों को मत आने दो जिनसे मन निरुत्साह और उदास हो और न ऐसे लोगों से दोस्ती करो कि जो दुःख पड़ते ही तुम्हारा साथ छोड़ देंगे।

९. जो लोग मुसीबत के वक्त धोखा दे जाते हैं उनकी मित्रता की याद मौत के वक्त भी दिल में जलन पैदा करेगी।

१०. पाकोसाफ़ लोगों के साथ बड़े शौक़ से दोस्ती करो; मगर जो लोग तुम्हारे अयोग्य हैं उनका साथ छोड़ दो, इसके लिये चाहे तुम्हें कुछ भेंट भी देना पड़े।

उनहत्तरवां परिच्छेद

झूठी मित्रता

१. उन कमबख्त नालायकों से होशियार रहो कि जो अपने लाभ के लिये तुम्हारे पैरों पर पड़ने के लिये तय्यार हैं; मगर जब तुमसे उनका कुछ मतलब न निकलेगा तो वे तुम्हें छोड़ देंगे। भला ऐसों की दोस्ती रहे या न रहे इस से क्या आता जाता है।

२. कुछ आदमी उस अक्खड़ घोड़े की तरह होते हैं कि जो युद्ध-क्षेत्र में अपने सवार को गिरा कर भाग जाता है। ऐसे लोगों से दोस्ती रखने की बनिस्बत तो अकेले रहना हज़ार दर्जे बेहतर है।

३. बुद्धिमानों की दुश्मनी भी बेवकूफों की दोस्ती से हज़ार दर्जे बेहतर है; और खुशामदी और मतलबी लोगों की दोस्ती से दुश्मनों की घृणा सैकड़ों दर्जे अच्छी है।

४. देखो जो लोग यह सोचते हैं कि हमें उस दोस्त से कितना मिलेगा वे उसी दर्जे के लोग हैं कि जिनमें चोरों और बाजारू औरतों की गिनती है।

५. खबरदार उन लोगों से जरा भी दोस्ती न करना कि जो कमरे में बैठ कर तो मीठी मीठी

सत्तरवाँ परिच्छेद

मूर्खता

१. क्या तुम जानना चाहते हो कि मूर्खता किसे कहते हैं ? जो चीज लाभदायक है, उस को फेंक देना और हानिकारक पदार्थ को पकड़ रखना—बस यही मूर्खता है ।

२. मूर्ख मनुष्य अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है, ज़ुबान से वाहियात और सख्त बातें निकालता है, उसे किसी तरह की शर्म और हया का ख़याल नहीं होता और न किसी नेक बात को पसन्द करता है ।

३. एक आदमी खूब पढ़ा-लिखा और चतुर है और दूसरों का गुरु है; मगर फिर भी वह इन्द्रिय-लिप्सा का दास बना रहता है—उससे बढ़ कर मूर्ख और कोई नहीं है ।

४. अगर मूर्ख को इत्तफ़ाक़ से बहुत सी दौलत मिल जाय तो ऐरे ग़ैरे अजनबी लोग ही मज़े उड़ायेंगे मगर उसके बन्धु-बान्धव तो बिचारे भूखों ही मरेंगे ।

इकहत्तरवाँ परिच्छेद

शत्रुओं के साथ व्यवहार

१. उस हत्यारी चीज़ को कि जिसे लोग दुश्मनी कहते हैं, जान-बूझ कर कभी न छेड़ना चाहिये; चाहे वह मज़ाक ही के लिये क्यों न हो।

२. *तुम उन लोगों को भले ही शत्रु बना लो* कि जिनका हथियार तीर-कमान है, मगर उन लोगों को कभी मत छेड़ना जिनका हथियार ज़ुबान है।

३. देखो, जिस राजा के पास सहायक तो कोई भी नहीं है, मगर जो ढेर के ढेर दुश्मनों को *युद्ध के लिये ललकारता है, वह पागल से भी* बढ़ कर पागल है।

४. जिस राजा में शत्रुओं को मित्र बना लेने *की कुशलता है उसकी शक्ति सदा स्थिर रहेगी।*

५. यदि तुमको बिना किसी सहायक के अकेले, दो शत्रुओं से लड़ना पड़े तो उन दो में से *किसी एक को अपनी ओर मिला लेने की* चेष्टा करो।

६. तुमने अपने पड़ोसी को दोस्त या दुश्मन बनाने का कुछ भी निश्चय कर रक्खा हो, बाह्य आक्रमण होने पर उसे कुछ भी न बनाओ; बस यों ही छोड़ दो।

७. अपनी मुश्किलों का हाल उन लोगों पर जाहिर न करो कि जो अभी तक अनजान हैं और न अपनी कमजोरियाँ अपने दुश्मनों को मालूम होने दो।

८. एक चतुरता-पूर्ण युक्ति सोचो, अपने साधनों को सुदृढ़ और सुसंगठित बनाओ और अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लो; यदि तुम यह सब कर लोगे तो तुम्हारे शत्रुओं का गर्व चूर्ण हो कर धूल में मिलते कुछ देर न लगेगी।

९. काँटेदार वृक्षों को छोटेपन में ही गिरा देना चाहिये क्योंकि जब वे बड़े हो जाँयगे तो स्वयं ही उस हाथ को घायल बना डालेंगे जो उन्हें काटने की कोशिश करेगा।

१०. जो लोग अपना अपमान करने वालों का गर्व चूर्ण नहीं करते वे बहुत समय तक नहीं रहेंगे।

बहत्तरवाँ परिच्छेद

घर का भेदी

१. कुञ्ज-वन और पानी के फव्वारे भी कुछ आनन्द नहीं देते, अगर उनसे बीमारी पैदा होती है; इसी तरह अपने रिश्तेदार भी जघन्य हो उठते हैं जब कि वे उसका सर्वनाश करना चाहते हैं।

२. उस शत्रु से डरने की जरुरत नहीं है कि जो नङ्गी तलवार की तरह है मगर उस शत्रु से सावधान रहो कि जो मित्र बन कर तुम्हारे पास आता है।

३. अपने गुप्त शत्रु से सदा होशियार रहो; क्योंकि मुसीबत के वक्त वह तुम्हें कुम्हार की डोर की तरह, बड़ी सफाई से, काट डालेगा।

४. अगर तुम्हारा कोई ऐसा शत्रु है कि जो मित्र के रुप में घूमता-फिरता है तो वह शीघ्र ही तुम्हारे साथियों में फूट के बीज बो देगा और तुम्हारे सिर पर सैकड़ों बलाएँ ला डालेगा।

५. जब कोई भाई-बिरादर तुम्हारे प्रतिकूल विद्रोह करे तो वह तुम पर ढेर की ढेर आपत्तियाँ ला सकता है, यहाँ तक कि उससे खुद तुम्हारी जान के लाले पड़ जायँगे।

६. जब किसी राजा के दरबार में दगाबाजी प्रवेश कर जाती है तो फिर यह असम्भव है कि एक न एक दिन वह उसका शिकार न हो जाय।

७. जिस घर में फूट पड़ी हुई है, वह उस बर्तन के समान है, जिसमें ढकन लगा हुआ है; यद्यपि वे दोनों देखने में एक से मालूम होते मगर फिर भी वे एक चीज़ कभी नहीं हो सकते।

८. देखो, जिस घर में फूट है वह रेती से रेते हुए लोहे की तरह रेजे रेजे होकर धूल में मिल जायगा।

९. जिस घर में पारस्परिक कलह है, सर्वनाश उसके सर पर लटक रहा है। फिर वह कलह चाहे तिल में पड़ी हुई दरार की तरह ही छोटी क्यों न हो।

१०. देखो, जो मनुष्य ऐसे आदमी के साथ बेत कल्लुफ़ी से पेश आता है कि जो दिल ही दि में उससे नफ़रत करता है, वह उस मनुष्य समान है जो काले नाग को साथी बनाकर ही झोंपड़े में रहता है।

तिहत्तरवाँ परिच्छेद

महान् पुरुषों के प्रति दुर्व्यवहार न करना

१. जो आदमी अपनी भलाई चाहता है, उसे सबसे ज्यादा खबरदारी इस बात की रखनी चाहिये कि वह होशियारी के साथ महान् पुरुषों का अपमान करने से अपने को बचाये रक्खे।

२. अगर कोई आदमी महात्माओं का निरादर करेगा तो उनकी शक्ति से उसके सर पर अनन्त आपत्तियाँ आ टूटेंगी।

३. क्या तुम अपना सर्वनाश कराना चाहते हो? तो जाओ, किसी की नेक सलाह पर ध्यान न दो और जा कर उन लोगों के साथ छेड़खानी करो कि जो जब चाहें तुम्हारा नाश करने की शक्ति रखते हैं।

४. देखो, दुर्बल मनुष्य, जो बलवान और शक्तिशाली पुरुषों का अपमान करता है, वह मानो यमराज को अपने पास आने का इशारा करता है।

५. देखो, जो लोग शक्ति-शाली महान् पुरुषों और राजाओं के क्रोध को उभारते हैं, वे चाहे कहीं जायँ कभी, सुखहाल न होंगे।

६. जलती हुई आग में पड़े हुए लोग चाहे भले ही बच जायँ, मगर उन लोगों की रक्षा का कोई उपाय नहीं है कि जो शक्ति-शाली लोगों के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं।

७. यदि आत्मिक-शक्ति से परिपूर्ण ऋषिगण तुम पर क्रुद्ध हैं, तो विविध प्रकार के आनन्दोच्छ्वास से उद्भासित तुम्हारा जीवन और समस्त ऐश्वर्य से पूर्ण तुम्हारा धन कहाँ होगा ?

८. देखो, जिन राजाओं का अस्तित्व अनन्त रूप से स्थायी भित्ति पर स्थापित है, वे भी अपने समस्त बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट हो जायँगे, यदि पर्वत के समान शक्ति-शाली महर्षिगण उनके सर्वनाश की कामना भर करें।

९. और तो और देवेन्द्र भी अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाय और अपना प्रभुत्व गंवा बैठे यदि पवित्र प्रतिज्ञा वाले सन्त लोग क्रोध भरी दृष्टि से उसकी ओर देखें।*

१०. यदि महान् आत्मिक-शक्ति रखने वाले लोग रुष्ट हो जायँ तो वे मनुष्य भी नहीं बच सकते कि जो मज़बूत से मज़बूत आश्रय के ऊपर निर्भर हैं।

* नहुष की कथा।

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

स्त्री का शासन

१. जो लोग अपनी स्त्रियों के श्री चरणों की अर्चना में ही लगे रहते हैं वे कभी महत्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं और जो महान् कार्य करने की उच्चाशा रखते हैं वे ऐसे वाहियात प्रेम के फन्दे में नहीं फँसते।

२. जो आदमी बेतरह अपनी स्त्री के मोह के फेर में पड़ा हुआ है, वह अपनी समृद्धिशाली अवस्था में भी लोगों में बदनाम हो जायगा और शर्म से उसे अपना मुँह छिपाना पड़ेगा।

३. वह नामर्द जो अपनी स्त्री के सामने झुक कर चलता है, लायक लोगों के सामने अपना मुँह दिखाने में हमेशा शरमावेगा।

४. शोक है उस मुक्ति-विहीन अभागे पर जो अपनी स्त्री के सामने काँपता है। उसके गुणों की कभी कोई कद्र न करेगा।

५. जो आदमी अपनी स्त्री से डरता है वह लायक लोगों की सेवा करने का भी साहस नहीं कर सकता।

६. जो लोग अपनी स्त्रियों के नाजुक बाजुओं से भीत रहते हैं, वे अगर फ़रिश्तों की तरह रहें तब भी कोई उनकी इज्जत न करेगा।

७. देखो, जो आदमी पत्नी-राज्य का आधिपत्य स्वीकार करता है; एक लजीली कन्या में भी उससे अधिक गौरव होता है।

८. देखो, जो लोग अपनी स्त्री के कहने में चलते हैं, वे अपने मित्रों की आवश्यकताओं को भी पूर्ण न कर सकेंगे और न उनसे कोई नेक काम ही हो सकेगा।

९. देखो; जो मनुष्य स्त्री-राज्य का शासन स्वीकार करते हैं, उन्हें न तो धर्म मिलेगा और न धन; न उन्हें मुहब्बत का मज़ा चखना ही नसीब होगा।

१०. देखो, जिन लोगों के विचार महत्वपूर्ण कार्यों में रत हैं और जो सौभाग्य लक्ष्मी के कृपा-पात्र हैं, वे अपनी स्त्रियों के मोह-जाल में फँसने की बेवक़ूफ़ी नहीं करते।

पचहत्तरवाँ परिच्छेद

शराब से घृणा

१. देखो, जिन लोगों को शराब पीने की लत पड़ी हुई है, उनके दुश्मन उनसे कभी न डरेंगे और जो कुछ शानोशौकत उन्होंने हासिल कर ली है, वह भी जाती रहेगी।

२. कोई भी शराब न पिये; लेकिन अगर कोई पीना ही चाहे तो उन लोगों को पीने दो कि जिन्हें लायक लोगों से इज्जत हासिल करने की पर्वाह नहीं है।

३. जो आदमी नशे में मदहोश है, उसकी सूरत खुद उसकी माँ को बुरी मालूम होती है। भला, शरीफ आदमियों को फिर उसकी सूरत कैसी लगेगी ?

४. देखो, जिन लोगों को मदिरा-पान की घृणित आदत पड़ी हुई है, सुन्दरी लज्जा उनसे अपना मुँह फेर लेती है।

५. यह तो हद दर्जे की बेवकूफी और नालायकी है कि अपना रुपया खर्च करें और बदले में सिर्फ बेहोशी और बदहवासी हाथ लगे।

६. देखो, जो लोग हर रोज़ उस ज़हर को पीते हैं कि जिसे ताड़ी या शराब कहते हैं, वे मानो महा निद्रा में अभिभूत हैं। उनमें और मुर्दों में कोई फ़र्क नहीं है।

७. देखो, जो लोग मुख़्फ़िया तौर पर नशा पीते हैं और अपने समय को बदहवासी और बेहोशी की दशा में गुज़ारते हैं, उनके पड़ोसी जल्दी ही इस बात को जान जायँगे और उनसे नफ़्रत करेंगे।

८. शराबी आदमी बेकार यह कह कर बहाना-साज़ी न करे कि मैं तो जानता ही नहीं, नशा किसे कहते हैं; क्योंकि ऐसा करने से वह सिर्फ़ अपनी उस बदकारी के साथ झूठ बोलने के पाप को शामिल करने का भागी होगा।

९. जो शख़्स नशे में मस्त हुए आदमी को नसीहत करता है, वह उस आदमी की तरह है जो पानी में डूबे हुए आदमी को मशाल लेकर ढूँढता है।

१०. जो आदमी होशोहवास की हालत में किसी शराबी की दुर्गति देखता है तो क्या वह ख़ुद उससे कुछ अन्दाज़ा नहीं लगा सकता कि जब वह नशे में होता है तो उसकी हालत कैसी होती होगी!

छिहत्तरवाँ परिच्छेद

वेश्या

१. देखो, जो स्त्रियाँ प्रेम के लिये नहीं बल्कि धन के लोभ से किसी पुरुष की कामना करती हैं, उनकी चापलूसी की बातें सुनने से दुःख ही दुःख होता है।

२. देखो, जो दुष्ट स्त्रियाँ मधु-मयी वाणी बोलती हैं मगर जिनका ध्यान अपने मुनाफे पर रहता है, उनकी चाल-ढाल को खयाल में रख कर उनसे सदा दूर रहो।

३. वेश्या जब अपने प्रेमी को छाती से लगाती है तो वह जाहिरा यह दिखाती है कि वह उससे प्रेम करती है; मगर दिल में तो उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई बेगारी अन्धेरे कमरे में किसी अजनबी के मुर्दा जिस्म को छूने से अनुभव करता है।*

४. देखो, जिन लोगों के मन का झुकाव पवित्र कार्यों की ओर है, वे असती स्त्रियों के स्पर्श से अपने शरीर को कलङ्कित नहीं करते।

---

* पैसा देकर किसी मनुष्य से लाश उठवाई जावे तो वह मनुष्य उस लाश को अन्धेरे में छूकर बीभत्स घृणा का अनुभव करेगा।

५. जिन लोगों की बुद्धि निर्मल है और जिनमें अगाध ज्ञान है वे उन औरतों के स्पर्श से अपने को अपवित्र नहीं करते कि जिनका सौन्दर्य और लावण्य सब लोगों के लिये खुला है।

६. जिनको अपनी भलाई का ख़याल है, वे उन शोख़ और आवारा औरतों का हाथ नहीं छूते कि जो अपनी नापाक ख़ूबसूरती को बेचती फिरती हैं।

७. जो ओछी तबियत के आदमी हैं, वही उन स्त्रियों को खोजेंगे कि जो सिर्फ़ शरीर से आलिङ्गन करती हैं जब कि उनका दिल दूसरी जगह रहता है।

८. जिनमें सोचने-समझने की बुद्धि नहीं है, उनके लिये चालाक कामिनियों का आलिङ्गन ही अप्सराओं की मोहिनी के समान है।

९. ख़ूब साज-सिंगार किये और बनी-ठनी फ़ाहिशा औरत के नाज़ुक बाज़ू एक तरह की गन्दी—दोज़ख़ी—नाली है जिसमें घृणित मूर्ख लोग जाकर अपने को डुबा देते हैं।

१०. दो दिलोंवाली औरत, शराब और जुआ, ये उन लोगों की ख़ुशी के सामान हैं कि जिन्हें भाग्य-लक्ष्मी छोड़ देती है।

सतहत्तरवां परिच्छेद

औषधि

१. वात से शुरू करके जिन तीन गुणों * का वर्णन ऋषियों ने किया है, उनमें से कोई भी यदि अपनी सीमा से घट या बढ़ जायगा तो वह बीमारी का कारण होगा।

२. शरीर के लिये औषधि की कोई ज़रूरत ही न हो यदि खाया हुआ खाना हज़म हो जाने बाद नया खाना खाया जाय।

३. खाना हमेशा एतदाल के साथ खाओ और खाये हुए खाने के अच्छी तरह से पच जाने के बाद भोजन करो—अपनी दीर्घायु होने का एक यही मार्ग है।

४. जब तक तुम्हारा खाना हज़म न हो जाय और तुम्हें खूब तेज़ भूख न लगे तब तक ठहरे रहो और उसके बाद एतदाल के साथ वह खाना खाओ जो तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है।

---

* वात, पित्त, कफ।

५. अगर तुम एतदाल के साथ ऐसा खाना खाओ कि जो तुम्हारी रुचि के अनुकूल है तो तुम्हारे जिस्म में किसी किस्म की तकलीफ़ पैदा न होगी।

६. जिस तरह तन्दुरुस्ती उस आदमी को ढूँढती है जो पेट खाली होने पर ही खाना खाता है; ठीक इसी तरह बीमारी उसको ढूँढती फिरती है जो हद से ज्यादा खाता है।

७. देखो, जो आदमी बेवक़ूफ़ी करके अपनी जठराग्नि से परे खूब ठूँस ठूँस कर खाना खाता है, उसकी बीमारियों की कोई सीमा न रहेगी।

८. रोग, उसकी उत्पत्ति और उसके निदान का पहले विचार करलो और तब होशियारी के साथ उसको दूर करने में लग जाओ।

९. वैद्य को चाहिये कि वह बीमार, बीमारी और मौसम के बाबत ग़ौर कर ले और तब उसके बाद दवा शुरू करे।

१०. रोगी, वैद्य, औषधि और अचार—इन चार पर सारे इलाज का दारोमदार है और उनमें से हर एक के फिर चार चार गुण हैं।

तृतीय खण्ड

विविध बातें

अटहत्तरवाँ परिच्छेद

कुलीनता

१. रास्तबाज़ी और ह्यादारी स्वभावतः उन्हीं लोगों में होती है, जो अच्छे कुल में जन्म लेते हैं।

२. सदाचार, सत्य-प्रियता और सलज्जता इन तीन चीज़ों से कुलीन पुरुष कभी पद-स्खलित नहीं होते।

३. सच्चे कुलीन सज्जन में ये चार गुण पाये जाते हैं—हँस-मुख चेहरा, उदार हाथ, मृदु-भाषण और स्निग्ध निरभिमान।

४. कुलीन पुरुष को करोड़ों रुपये मिलें तब भी वह अपने नाम को कलङ्कित न होने देगा।

५. उन प्राचीन कुलों के वंशजों की ओर देखो! अपने ऐश्वर्य के क्षीण हो जाने पर भी वे अपनी उदारता को नहीं छोड़ते।

६. देखो, जो लोग अपने कुल के प्रतिष्ठित आचारों को पवित्र रखना चाहते हैं, वे न तो कभी धोखेबाजी से काम लेंगे और न कुकर्म करने पर उतारू होंगे।

७. प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य के दोष पर चन्द्रमा के कलङ्क की तरह विशेष रूप से सब की नजर पड़ती है।

८. अच्छे कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य की जुबान से यदि फूहड़ और वाहियात बातें निकलेंगी तो लोग उसके जन्म के विषय तक में शङ्का करने लगेंगे।

९. जमीन की खासियत का पता उसमें उगने वाले पौधे से लगता है; ठीक इसी तरह, मनुष्य के मुख से जो शब्द निकलते हैं उनसे उसके कुल का हाल मालूम हो जाता है।

१०. अगर तुम नेकी और सद्गुणों के इच्छुक हो तो तुम को चाहिये कि सलज्जता के भाव का उपार्जन करो। अगर तुम अपने वंश को सम्मानित बनाना चाहते हो तो तुम सब लोगों के साथ इज्जत से पेश आओ।

उन्नासिवाँ परिच्छेद

प्रतिष्ठा

१. उन बातों से सदा दूर रहो कि जो तुम्हें नीचे गिरा देंगी; चाहे वे प्राण-रक्षा के लिये अनिवार्य रूप ही से, आवश्यक क्यों न हों।

२. देखो, जो लोग अपने पीछे यशस्वी नाम छोड़ जाना चाहते हैं, वे अपनी शान बढ़ाने के लिये भी वह काम न करेंगे कि जो उचित नहीं है।

३. समृद्ध अवस्था में तो नम्रता और विनय की विस्फूर्ति करो; लेकिन हीन स्थिति के समय मान-मर्यादा का पूरा ख़याल रक्खो।

४. देखो, जिन लोगों ने अपने प्रतिष्ठित नाम को दूषित बना डाला है, वे बालों की उन लटों के समान हैं कि जो काट कर फेंक दी गयी हों।

५. पर्वत के समान शान्दार लोग भी बहुत ही क्षुद्र दिखायी पड़ने लगेंगे, अगर वे कोई दुष्कर्म करेंगे; फिर चाहे वह कर्म घुंघची के समान ही छोटा क्यों न हो।

अस्सीवाँ परिच्छेद

महत्व

१. महान् कार्यों के सम्पादन करने की आकांक्षा को ही लोग महत्व के नाम से पुकारते हैं और ओछापन उस भावना का नाम है जो कहती है कि मैं उसके बिना ही रहूँगी।

२. पैदाइश तो सब लोगों की एक ही तरह की होती है मगर उनकी प्रसिद्धि में विभिन्नता होती है क्योंकि उनका जीवन दूसरी ही तरह का होता है।

३. शरीफ़ज़ादे होने पर भी वे अगर शरीफ़ नहीं हैं तो शरीफ़ नहीं कहला सकते और जन्म से नीच होने पर भी जो नीच नहीं हैं वे नीच नहीं हो सकते।

४. रमणी के सतीत्व की तरह महत्व की रक्षा भी केवल आत्म-शुद्धि—आत्मा के प्रति सरल, निष्कपट व्यवहार—द्वारा ही की जा सकती है।

५. महान् पुरुषों में समुचित साधनों को उपयोग में लाने और ऐसे कार्यों के सम्पादन करने

इक्यासिवाँ परिच्छेद

योग्यता

१. देखो; जो लोग अपने कर्त्तव्य को जानते हैं और अपने अन्दर योग्यता पैदा करनी चाहते हैं, उनकी दृष्टि में सभी नेक काम कर्त्तव्य स्वरूप हैं।

२. लायक़ लोगों के आचरण की सुन्दरता ही उनकी वास्तविक सुन्दरता है; शारीरिक सुन्दरता उनकी सुन्दरता में किसी तरह की अभिवृद्धि नहीं करती है।

३. सार्वजनिक प्रेम, सलज्जता का भाव, सब के प्रति सद्‌व्यवहार, दूसरे के दोषों की पर्दा-दारी और सत्य-प्रियता—ये पाँच स्तम्भ हैं जिन पर शुभ आचरण की इमारत का अस्तित्व होता है।

४. सन्त लोगों का धर्म है अहिंसा; मगर योग्य पुरुषों का धर्म इस बात में है कि वे दूसरों की निन्दा करने से परहेज़ करें।

५. खाकसारी—नम्रता-बलवानों की शक्ति है और वह दुश्मनों के मुक़ाबिले में लायक़ लोगों के लिये कवच का काम भी देती है।

पचासियाँ परिच्छेद

खुश इख़्लाकी

१. कहते हैं, मिलनसारी प्राय: उन लोगों में पायी जाती है कि जो खुले दिल से सब लोगों का स्वागत करते हैं।

२ खुश इख़्लाकी, मेहरबानी और नेक तरबियत इन दो सिफ़तों के मजमुए से पैदा होती है।

३. शारीरिक आकृति और सूरत शक्ल से आदमियों में सादृश्य नहीं होता है; बल्कि सच्चा सादृश्य तो आचार-विचार की अभिन्नता पर निर्भर है।

४. देखो, जो लोग न्याय-निष्ठा और धर्म-पालन के द्वारा अपना और दूसरों का—सबका—भला करते हैं, दुनियाँ उनके इख़्लाक़ की बड़ी क़द्र करती है।

५. हंसी मजाक़ में भी कड़वे वचन आदमी के दिल में चुभ जाते हैं, इसलिये शरीफ़ लोग अपने दुश्मनों के साथ भी बद इख़्लाकी से पेश नहीं आते हैं।

चौरासियाँ परिच्छेद

लज्जा की भावना

१. लायक़ लोगों का लजाना उन कामों के लिये होता है कि जो उनके अयोग्य होते हैं; इसलिये वह सुन्दरी स्त्रियों के शरमाने से बिलकुल भिन्न है।

२. खाना, कपड़ा और सन्तान सबके लिये एक समान हैं; यह तो लज्जा की भावना है जिससे मनुष्य-मनुष्य का अन्तर प्रकट होता है।*

३. शरीर तो समस्त प्राणों का निवासस्थान है मगर यह सात्विक लज्जा की लालिमा है जिसमें लायक़ी या योग्यता वास करती है।

४. लज्जा की भावना क्या लायक लोगों के लिये मणि के समान नहीं है? और जब वह उस भावना से रहित होता है तो उसकी शेखी और ऐंठ क्या देखने वाली आँख को पीड़ा पहुँचाने वाली नहीं होती?

---

* आहार-निद्रा-भय मैथुनञ्च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहितेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

संस्कृत-कवि के अनुसार मनुष्य को पशुओं से श्रेष्ठ बनाने वाला धर्म है। महर्षि तिरुवल्लुवर कहते हैं कि मनुष्य से मनुष्य को श्रेष्ठ बनाने वाली लज्जा की भावना है।

पचासीवां परिच्छेद

कुलोन्नति

१. मनुष्य की यह प्रतिज्ञा कि अपने हाथों से मेहनत करने में मैं कभी न थकूंगा, उस के परिवार की उन्नति करने में जितनी सहायक होती है, उतनी और कोई चीज़ नहीं हो सकती।

२. मर्दाना मशक्कत और सही व सालिम अक्ल— इन दोनों की परिपक्व पूर्णता ही परिवार को ऊँचा उठाती है।

३. जब कोई मनुष्य यह कह कर काम करने पर उतारु होता है कि मैं अपने कुल की उन्नति करूँगा तो खुद देवता लोग अपनी अपनी कमर कस कर उस के आगे आगे चलते हैं।

४. देखो, जो लोग अपने खानदान को ऊँचा बनाने में कुछ उठा नहीं रखते, वे इस के लिये यदि कोई सुविस्तृत युक्ति न भी निकालें तब भी उन के हाथ से किये हुए काम में बरकत होगी।

५. देखो; जो आदमी बिना किसी किस्म के अनाचार के अपने कुल को उन्नत बनाता है; सारी दुनिया उस को अपना दोस्त समझेगी।

छियासीवाँ परिच्छेद

खेती

१. आदमी जहाँ चाहें, घूमें; मगर आखिरकार अपने भोजन के लिये उन्हें हल का सहारा लेना ही पड़ेगा; इसलिये हर तरह की सख्ती होने पर भी कृषि सर्वोत्तम उद्यम है।

२. किसान लोग समाज के लिये धुरी के समान हैं; क्योंकि जोतने-खोदने की शक्ति न होने के कारण जो लोग दूसरे काम करने लगते हैं, उन को रोज़ी देने वाले वे ही लोग हैं।

३. जो लोग हल के सहारे जीते हैं, वास्तव में वे ही जीते हैं; और सब लोग तो दूसरों की कमाई हुई रोटी खाते हैं।

४. देखो, जिन लोगों के खेत लहलहाती हुई शस्य की श्यामल छाया के नीचे सोया करते हैं, वे दूसरे राजाओं के छत्रों को अपने राजा के राज-छत्र के सामने झुकता हुआ देखेंगे।

५. देखो, जो लोग खेती कर के रोज़ी कमाते हैं, वे सिर्फ़ यही नहीं कि खुद कभी भीख न माँगेंगे, बल्कि वे दूसरे लोगों को, कि जो भीख माँगते हैं, बग़ैर कभी इन्कार किये, दान भी दे सकेंगे।

सत्तासीवां परिच्छेद

मुफ़लिसी

१. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि कङ्गाली से बढ़ कर दुःखदायी चीज़ और क्या है ? तो सुनो, कङ्गाली ही कङ्गाली से बढ़ कर दुःख दायी है।

२. कमबख़्त मुफ़लिसी इस जन्म के सुखों की तो दुश्मन है ही, मगर साथ ही साथ दूसरे जन्म के सुखोपभोग की भी घातक है।

३. ललचाती हुई कङ्गाली ख़ान्दानी शान और ज़ुबान की नफ़ासत तक की हत्या कर डालती है।

४. ज़रूरत ऊँचे कुल के आदमियों तक की आन छुड़ा कर उन्हें अत्यन्त निकृष्ट और हीन दासता की भाषा बोलने पर मजबूर करती है।

५. उस एक अभिशाप के नीचे कि जिसे लोग दरिद्रता कहते हैं, हज़ार तरह की आपत्तियें और बलायें छिपी हुई हैं।

६. ग़रीब आदमी के शब्दों की कोई क़द्रो क़ीमत नहीं होती, चाहे वह कमाल उस्तादी और अचूक ज्ञान के साथ अगाध सत्य की ही विवेचना क्यों न करे।

सत्तासीवां परिच्छेद

मुफ़लिसी

१. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि कङ्गाली से बढ़ कर दुःखदायी चीज और क्या है ? तो सुनो, कङ्गाली ही कङ्गाली से बढ़ कर दुःख दायी है।

२. कमबख्त मुफ़लिसी इस जन्म के सुखों की तो दुश्मन है ही, मगर साथ ही साथ दूसरे जन्म के सुखोपभोग की भी घातक है।

३. ललचाती हुई कङ्गाली खान्दानी शान और ज़ुबान की नफ़ासत तक को हत्या कर डालती है।

४. ज़रूरत ऊँचे कुल के आदमियों तक की आन छुड़ा कर उन्हें अत्यन्त निकृष्ट और हीन दासता की भाषा बोलने पर मजबूर करती है।

५. उस एक अभिशाप के नीचे कि जिसे लोग दरिद्रता कहते हैं, हजार तरह की आपत्तियें और बलायें छिपी हुई हैं।

६. ग़रीब आदमी के शब्दों की कोई क़द्रो क़ीमत नहीं होती, चाहे वह कमाल उस्तादी और अचूक ज्ञान के साथ अगाध सत्य की ही विवेचना क्यों न करे।

सब भी उस से बढ़ कर मनोहर और कोई चीज नहीं हो सकती।

६. इस बड़े नगर के लिये पानी की प्रीति, फिर भी जिन्दा के लिये [illegible] रास्तों को स्वीकार करने से बढ़ कर आत्मघातक बात और कोई नहीं।

७. जो लोग मांगते हैं [illegible] कि बस एक भिखारी मांगता है — मगर मुझको मांगना ही है [illegible] कि जो [illegible] करते हैं।

८. भावना का वह नाजुक जहाज कभी समय दूर कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा कि जिस दम वह हीनभावना की चट्टान से टकरायेगा।

९. भिखारी के भाग्य का फैसला करके ही दिल चोट करता है मगर जब वह उन झिड़कियों पर गौर करता है कि जो भिखारी को सहनी पड़ती हैं तब तो वह दर्द मर ही जाता है।

१०. मना करने वाले की जान उस वक्त कहाँ जाकर छिप जाती है कि जब वह "नहीं" कहता है? भिखारी की जान तो झिड़की की आवाज सुनते ही तन से निकल जाती है।*

---

* इस विषय पर रहीम का दोहा है—
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उन ते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

६. नीच लोग तो ढिंढोरे वाले ढोल की तरह होते हैं, क्योंकि उनको जो राज़ की बातें बताई जाती हैं, उनको दूसरे लोगों पर जाहिर किये बिना, उन्हें चैन ही नहीं पड़ता।

७. नीच प्रकृति के आदमी उन लोगों के सिवा कि जो घूँसा मार कर उसका जबड़ा तोड़ सकते हैं, और किसी के आगे भोजन से सने हुए हाथ झटक देने में भी आना-कानी करेंगे।

८. लायक़ लोगों के लिये तो सिर्फ़ एक शब्द ही काफ़ी है, मगर नीच लोग गन्ने की तरह खूब कुटने-पिटने पर ही देने पर राज़ी होते हैं।

९. दुष्ट मनुष्य ने अपने पड़ोसी को ज़रा खुशहाल और खाते-पीते देखा नहीं कि बस वह फ़ौरन् ही उसके चाल-चलन में दोष निकालने लगता है।

१०. दुष्ट मनुष्य पर जब कोई आपत्ति आती है तो बस उसके लिये एक ही मार्ग खुला होता है, और वह यह कि जितनी जल्द मुमकिन हो, वह अपने को बेच डाले।

---

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैंकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रैल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रैल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुछ १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो धार्मिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे तीन रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ७) धार्मिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ७) धार्मिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में ११०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी० पी० द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

) ग्राहकों के पत्रो देते समय अपना ग्राहक नम्बर इस
चाहिये । इसमें भूल न रहे ।
) मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकों के भी य
स्थाई ग्राहक बनना चाहें तो ।।) प्रवेश फ़ीस भेज कर ब
हैं । जब जब पुस्तकें निकलेंगी उनको लागत मूल्य से वी० पी
ज दी जावेंगी ।

सस्ती-साहित्य-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

ण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (ले०—महात्मा गांधी
१) पृष्ठ सं० २७१, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≈) सर्वसाधारण से ।॥)
म० गांधीजी लिखते हैं—"बहुत समय से मैं सोच रहा था
सत्याग्रह-संग्राम का इतिहास लिखूँ, क्योंकि इसका कितना ही
लिख सकता हूँ । कौनसी बात किस हेतु से की गई है, यह
का संचालक ही जान सकता है । सत्याग्रह के सिद्धांत का स
लोगों में हो, इसलिये यह पुस्तक लिखी गई है ।" सरस्वती,
प्रताप आदि पत्रों ने इस पुस्तक के दिव्य विचारों की प्रशंसा की
(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर
एम० टी०) पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से केव
साधारण से ।≈) प्रत्येक इतिहास प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिए ।
(३) दिव्य जीवन—अर्थात् उत्तम विचारों का जीवन पर
र प्रसिद्ध स्विट् मार्सडन के The Miracles of Ri
houghts का हिंदी अनुवाद । पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य स्थायी
) सर्व साधारण से ।≈) चौथी बार छपी है ।
(४) भारत के स्त्री-रत्न—(पाँच भाग) इस ग्रंथ में वैदिक
लेकर आजतक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पातिव्रत्य
दान् और भक्त कोई ५०० स्त्रियों का जीवन-वृत्तान्त होगा। हिंदी में
ा ग्रन्थ आज तक नहीं निकला । प्रथम भाग पृष्ठ ११० मूल्य
हकों से केवल ।॥) सर्वसाधारण से १) आगे के भाग शीघ्र छपेंगे
... पुस्तक बालक, वृद्ध, इ

सभी को उपयोगी है, परस्पर बड़ों व छोटों के प्रति तथा संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, ऐसे ही अनेक उपयोगी उपदेश भरे हुए हैं। पृष्ठ १०८, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)॥ दूसरी बार छपी है

(६) आत्मोपदेश—(यूनान के प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी महात्मा एपिक्टेटस के विचार) पृष्ठ १०४, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)

(७) क्या करें ?—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इसमें मनुष्य जाति के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों पर बहुत ही सुंदर और मार्मिक विवेचन किया गया है। महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मूल्य केवल ॥=) स्थाई ग्राहकों से ।≡) दूसरा भाग भी छप रहा है उसका मूल्य भी लगभग यही रहेगा।

(८) कलवार की करतूत—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इस नाटक में शराब पीने के दुष्परिणाम बड़ी सुंदर रीति से दिखलाये गये हैं। पृष्ठ ४० मूल्य -)॥ स्थाई ग्राहकों से -)।

(९) जीवन-साहित्य—म० गांधी के सत्याग्रह आश्रम के प्रसिद्ध विचारक और लेखक काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) स्थाई ग्राहकों से ।=) इसका दूसरा भाग भी छप रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त नौ पुस्तकें १६८६ पृष्ठों की इस माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुई हैं अब दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १९२० में जो जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उनका नोटिस कवर के चौथे पृष्ठ पर छपा है।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग—(ले० अध्यात्म योगी श्री अश्विनीकुमार दत्त। इसमें निष्काम कर्म किस प्रकार किये जाते हैं—तथा कर्मवीर किसे कहते हैं—आदि बातें बड़ी खूबी से बताई गई हैं। पृष्ठ सं० १५२, मूल्य केवल ।=) स्थायी ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—सीता जी की

, विज्ञान में तथा अनेक विदेशी बड़ावानों द्वारा छिद्र में
सं० १२७, मूल्य ।~) स्थायी ग्राहकों से ॥)॥
[illegible]न्या-शिक्षा—सास, श्वसुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का
ना चाहिये, घर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, क्या-
ाई गई हैं। पृष्ठ सं० ९२, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ॥)
यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था,
आज आडम्बरमय जीवन की नक़ल कर हमारी अवस्था कैसी
ते गई है। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं—आदि
[illegible]ुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य केवल ॥~)
[illegible]कों से ।≈)॥
स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टेरेंस मेक्स-
Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-
ो पढ़ना चाहिये। पृष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से ।~)॥
तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) मू० छे० पथ
[illegible]मों—इसमें अनेक ग्रन्थों को मनन करके एकांत हृदय के सामाजिक,
क और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक
[illegible]खे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १०६, मूल्य
[illegible]यी ग्राहकों से ।~)
[illegible] गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक
[illegible]चारण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल
के लोगों पर अंग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और
व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों
प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुक़ाबला किया उसका गौरव-पूर्ण
वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना
[illegible] जा सकता। पृष्ठ २९६ मूल्य केवल ॥≈) स्थायी ग्राहकों से ।≈)।
) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। [illegible]
३० मार्च सन् १९२७ तक छप जायगा। इस माला में प्रका[illegible]
और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तक[illegible]
मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये!

पता—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

यह प्रार्थना उन्हीं से है जिन्हें अपनी मातृभाषा से प्रेम हो

हिन्दी भाषा की अपील

भारतवर्ष को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार के लिये एक ऐसी सार्वजनिक संस्था की परमावश्यकता थी जो शुद्ध सेवा भाव से बिना किसी प्रकार के लाभ की इच्छा रखते हुए हिन्दी में उत्तमोत्तम पुस्तकें बहुत ही स्वल्प मूल्य में निकाले। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये यह सस्ता मंडल स्थापित हुआ है। अभी तक जो **पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं यह साथवाले नोटिस से आपको मालूम हो जायगा।**

मंडल का आदर्श

अभी हमने १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें स्थाई ग्राहकों को देना निश्चय किया है। पर हमारा आदर्श है कि १) में ८००) से १००० पृष्ठों तक की पुस्तकें हम निकाल सकें। यदि यह दिन आगया जो कि अवश्य आवेगा तो हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा हो सकेगी।

मण्डल के लाभ और हानि का सवाल

मण्डल सिर्फ इतना ही चाहता है कि उसके काम करनेवाले कार्यकर्ताओं का वेतन निकल आवे और वह इस तरह स्वावलम्बी होकर चिरकाल तक हिन्दी की सेवा कर सके, बस यही उसका स्वार्थ है। अभी जो १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें देने का निश्चय किया है उसमें अबतक **चार हजार ग्राहक न बन जावें तबतक मण्डल को बराबर हानि होती रहेगी।** इतने ग्राहक हो जाने पर १) में उपरोक्त पृष्ठों की पुस्तकें देने से मण्डल को हानि न उठानी पड़ेगी। **ज्योंही चार हजार से ऊपर ग्राहक बढ़ने लगे वैसे ही पृष्ठ संख्या भी बढ़ने लगेगी।**

मण्डल के जीवन का आधार

उसके स्थाई ग्राहक हैं—गुजरात जैसे छोटे से प्रांत में वहां के सस्तुं-साहित्य कार्यालय के सात हजार स्थाई ग्राहक हैं। इसीलिये आज उस संस्था से कई उत्तम ग्रन्थ स्वल्प मूल्य में निकल गये हैं। इस हिसाब से हिन्दी में तो बीसियों हजार ग्राहक हो जाना चाहिये। (पीछे देखिये)